॥ श्रीहरिः ॥

1647

देवीभागवतकी प्रमुख कथाएँ

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवान् विष्णुके हयग्रीवावतारकी कथा

एक समयकी बात है। हयग्रीव नामका एक परम पराक्रमी दैत्य हुआ। उसने सरस्वती नदीके तटपर जाकर भगवती महामायाकी प्रसन्नताके लिये बड़ी कठोर तपस्या की। वह बहुत दिनोंतक बिना कुछ खाये भगवतीके मायाबीज एकाक्षर महामन्त्रका जप करता रहा। उसकी इन्द्रियाँ उसके वशमें हो चुकी थीं। सभी भोगोंका उसने त्याग कर दिया था। उसकी कठिन तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवतीने उसे तामसी शक्तिके रूपमें दर्शन दिया। भगवती महामायाने उससे कहा—'महाभाग! तुम्हारी तपस्या सफल हुई। मैं तुमपर परम प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो भी इच्छा हो मैं उसे पूर्ण करनेके लिये तैयार हूँ। वत्स! वर माँगो।'

भगवतीकी दया और प्रेमसे ओतप्रोत वाणी सुनकर हयग्रीवकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। उसके नेत्र आनन्दके अश्रुओंसे भर गये। उसने भगवतीकी स्तुति करते हुए कहा—'कल्याणमयी देवि! आपको नमस्कार है। आप महामाया हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार करना आपका स्वाभाविक गुण है। आपकी कृपासे कुछ भी असम्भव नहीं है। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अमर होनेका वरदान देनेकी कृपा करें।'

देवीने कहा—'दैत्यराज! संसारमें जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु निश्चित है। प्रकृतिके इस विधानसे कोई नहीं बच सकता है। किसीका सदाके लिये अमर होना असम्भव है। अमर देवताओंको भी पुण्य समाप्त होनेपर मृत्युलोकमें जाना पड़ता है। अतः तुम अमरत्वके अतिरिक्त कोई और वर माँगो।'

हयग्रीव बोला—'अच्छा तो हयग्रीवके हाथों ही मेरी मृत्यु हो। दूसरे मुझे न मार सकें। मेरे मनकी यही अभिलाषा है। आप उसे पूर्ण करनेकी कृपा करें।' 'ऐसा ही हो' यह कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं। हयग्रीव असीम आनन्दका अनुभव करते हुए अपने घर चला गया। वह दुष्ट देवीके वरके प्रभावसे अजेय हो गया। त्रिलोकीमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो उस दुष्टको मार सके। उसने ब्रह्माजीसे वेदोंको छीन लिया और देवताओं तथा मुनियोंको सताने लगा। यज्ञादि कर्म बन्द हो गये और सृष्टिकी व्यवस्था बिगड़ने लगी। ब्रह्मादि देवता भगवान् विष्णुके पास गये, किन्तु वे योगनिद्रामें निमग्न थे। उनके धनुषकी डोरी चढ़ी हुई थी। ब्रह्माजीने उनको जगानेके लिये वम्री नामक एक कीड़ा उत्पन्न किया। ब्रह्माजीकी प्रेरणासे उसने धनुषकी प्रत्यंचा काट दी। उस समय बड़ा भयंकर शब्द हुआ और भगवान् विष्णुका मस्तक कटकर अदृश्य हो गया। सिररहित भगवान्के धड़को देखकर देवताओंके दुःखकी सीमा न रही। सभी लोगोंने इस विचित्र घटनाको देखकर भगवतीकी स्तुति की। भगवती प्रकट हुईं। उन्होंने कहा—'देवताओ चिन्ता मत करो। मेरी कृपासे तुम्हारा मङ्गल ही होगा। ब्रह्माजी एक घोड़ेका मस्तक काटकर भगवान्के धड़से जोड़ दें। इससे भगवान्का हयग्रीवावतार होगा। वे उसी रूपमें दुष्ट हयग्रीव दैत्यका वध करेंगे।' ऐसा कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं।

भगवतीके कथनानुसार उसी क्षण ब्रह्माजीने एक घोड़ेका मस्तक उतारकर भगवान्के धड़से जोड़ दिया। भगवतीके कृपाप्रसादसे उसी क्षण भगवान् विष्णुका हयग्रीवावतार हो गया। फिर भगवान्का हयग्रीव दैत्यसे भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें भगवान्के हाथों हयग्रीवकी मृत्यु हुई। हयग्रीवको मारकर भगवान्ने वेदोंको ब्रह्माजीको पुनः समर्पित कर दिया और देवताओं तथा मुनियोंका संकट निवारण किया।

1647/1A

1647/1B

मधु-कैटभकी कथा

प्राचीन समयकी बात है। चारों ओर जल-ही-जल था, केवल भगवान् विष्णु शेषनागकी शय्यापर सोये हुए थे। उनके कानकी मैलसे मधु और कैटभ नामके दो महापराक्रमी दानव उत्पन्न हुए। वे सोचने लगे कि हमारी उत्पत्तिका कारण क्या है? कैटभने कहा—'भैया मधु! इस जलमें हमारी सत्ताको कायम रखनेवाली भगवती महाशक्ति ही हैं। उनमें अपार बल है। उन्होंने ही इस जलतत्त्वकी रचना की है। वे ही परम आराध्या शक्ति हमारी उत्पत्तिकी कारण हैं।' इतनेमें ही आकाशमें गूँजता हुआ सुन्दर 'वाग्बीज' सुनायी पड़ा। उन दोनोंने सोचा कि यही भगवतीका महामन्त्र है। अब वे उसी मन्त्रका ध्यान और जप करने लगे। अन्न और जलका त्याग करके उन्होंने एक हजार वर्षतक बड़ी कठिन तपस्या की। भगवती महाशक्ति उनपर प्रसन्न हो गयीं। अन्तमें आकाशवाणी हुई—'दैत्यो! तुम्हारी तपस्यासे मैं प्रसन्न हूँ। इच्छानुसार वर माँगो!'

आकाशवाणी सुनकर मधु और कैटभने कहा—'सुन्दर व्रतका पालन करनेवाली देवि! तुम हमें स्वेच्छामरणका वर देनेकी कृपा करो।' देवीने कहा—'दैत्यो! मेरी कृपासे इच्छा करनेपर ही मौत तुम्हें मार सकेगी। देवता और दानव कोई भी तुम दोनों भाइयोंको पराजित नहीं कर सकेंगे।'

देवीके वर देनेपर मधु और कैटभको अत्यन्त अभिमान हो गया। वे समुद्रमें जलचर जीवोंके साथ क्रीड़ा करने लगे। एक दिन अचानक प्रजापति ब्रह्माजीपर उनकी दृष्टि पड़ी। ब्रह्माजी कमलके आसनपर विराजमान थे। उन दैत्योंने ब्रह्माजीसे कहा—'सुव्रत! तुम हमारे साथ युद्ध करो। यदि लड़ना नहीं चाहते तो इसी क्षण यहाँसे चले जाओ; क्योंकि यदि तुम्हारे अन्दर शक्ति नहीं है तो इस उत्तम आसनपर बैठनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।' मधु और कैटभकी बात सुनकर ब्रह्माजीको अत्यन्त चिन्ता हुई। उनका सारा समय तपमें बीता था। युद्ध करना उनके स्वभावके प्रतिकूल था। भयभीत होकर वे भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। उस समय भगवान् विष्णु योगनिद्रामें निमग्न थे। ब्रह्माजीके बहुत प्रयास करनेपर भी उनकी निद्रा नहीं टूटी। अन्तमें उन्होंने भगवती योगनिद्राकी स्तुति करते हुए कहा—'भगवति! मैं मधु और कैटभके भयसे भयभीत होकर तुम्हारी शरणमें आया हूँ। भगवान् विष्णु तुम्हारी मायासे अचेत पड़े हैं। तुम सम्पूर्ण जगत्की माता हो। सभीका मनोरथ पूर्ण करना तुम्हारा स्वभाव है। तुमने ही मुझे जगत्स्रष्टा बनाया है। यदि मैं दैत्योंके हाथसे मारा गया तो तुम्हारी बड़ी अपकीर्ति होगी। अतः तुम भगवान् विष्णुको जगाकर मेरी रक्षा करो।'

ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुनकर भगवती भगवान् विष्णुके नेत्र, मुख, नासिका, बाहु और हृदयसे निकलकर आकाशमें स्थित हो गयीं और भगवान् उठकर बैठ गये। तदनन्तर उनका मधु और कैटभसे पाँच हजार वर्षोंतक घोर युद्ध हुआ, फिर भी वे उन्हें परास्त करनेमें असफल रहे। विचार करनेपर भगवान्को ज्ञात हुआ कि इन दोनों दैत्योंको भगवतीने इच्छामृत्युका वर दिया है। भगवतीकी कृपाके बिना इनको मारना असम्भव है। इतनेमें ही उन्हें भगवती योगनिद्राके दर्शन हुए। भगवान्ने रहस्यपूर्ण शब्दोंमें भगवतीकी स्तुति की। भगवतीने प्रसन्न होकर कहा—'विष्णु! तुम देवताओंके स्वामी हो। मैं इन दैत्योंको मायासे मोहित कर दूँगी, तब तुम इन्हें मार डालना।'

भगवतीका अभिप्राय समझकर भगवान्ने दैत्योंसे कहा कि तुम दोनोंके युद्धसे मैं परम प्रसन्न हूँ। अतः मुझसे इच्छानुसार वर माँगो। दैत्य भगवतीकी मायासे मोहित हो चुके थे। उन्होंने कहा—'विष्णो! हम याचक नहीं हैं, दाता हैं। तुम्हें जो माँगना हो हमसे प्रार्थना करो। हम देनेके लिये तैयार हैं।' भगवान् बोले—'यदि देना ही चाहते हो तो मेरे हाथोंसे मृत्यु स्वीकार करो।' भगवतीकी कृपासे मोहित होकर मधु और कैटभ अपनी ही बातोंसे ठगे गये। भगवान् विष्णुने दैत्योंके मस्तकोंको अपने जाघोंपर रखवाकर सुदर्शन चक्रसे काट डाला। इस प्रकार मधु और कैटभका अन्त हुआ।
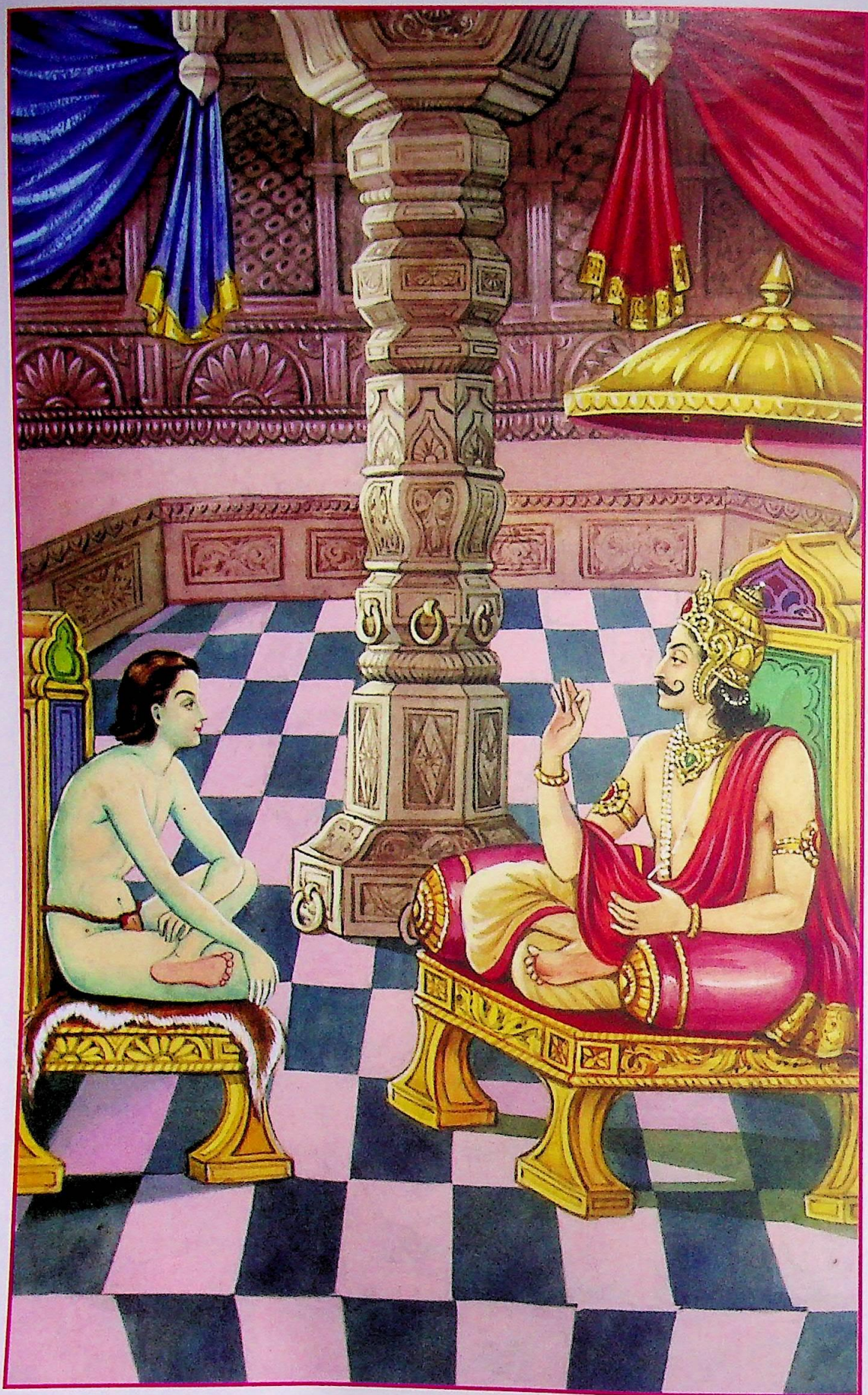
महामुनि शुकदेव एवं तत्त्वज्ञानी जनक

पुत्रप्राप्तिकी कामनासे भगवान् व्यासने भगवान् शंकरकी उपासना की, जिसके फलस्वरूप उन्हें शुकदेवजी पुत्ररूपमें प्राप्त हुए। व्यासजीने शुकदेवजीके जातकर्म, यज्ञोपवीत आदि सभी संस्कार सम्पन्न किये। गुरुकुलमें रहकर शुकदेवजीने शीघ्र ही सम्पूर्ण वेदों एवं अखिल धर्मशास्त्रोंमें अद्भुत पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। गुरुगृहसे लौटनेके बाद व्यासजीने पुत्रका प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया। उन्होंने शुकदेवजीसे कहा—'पुत्र! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। तुमने वेद और धर्मशास्त्र पढ़ लिये। अब अपना विवाह कर लो और गृहस्थ बनकर देवताओं तथा पितरोंका यजन करो!'

शुकदेवजीने कहा—'पिताजी! गृहस्थाश्रम सदा कष्ट देनेवाला है। महाभाग! मैं आपका औरस पुत्र हूँ। आप मुझे इस अन्धकारपूर्ण संसारमें क्यों ढकेल रहे हैं? स्त्री, पुत्र, पौत्रादि सभी परिजन दुःखपूर्तिके ही साधन हैं। इनमें सुखकी कल्पना करना भ्रममात्र है। जिसके प्रभावसे अविद्याजन्य कर्मोंका अभाव हो जाय, आप मुझे उसी ज्ञानका उपदेश करें।'

व्यासजीने कहा—'पुत्र! तुम बड़े भाग्यशाली हो। मैंने देवीभागवतकी रचना की है। तुम इसका अध्ययन करो। सर्वप्रथम आधे श्लोकमें इस पुराणका ज्ञान भगवती पराशक्तिने भगवान् विष्णुको देते हुए कहा है—'यह सारा जगत् मैं ही हूँ, मेरे सिवा दूसरी कोई अविनाशी वस्तु है ही नहीं।' भगवान् विष्णुसे यह ज्ञान ब्रह्माजीको मिला और ब्रह्माजीने इसे नारदजीको बताया तथा नारदजीसे यह मुझे प्राप्त हुआ। फिर मैंने इसकी बारह स्कन्धोंमें व्याख्या की। महाभाग! तुम इस वेदतुल्य देवीभागवतका अध्ययन करो। इससे तुम संसारमें रहते हुए मायासे अप्रभावित रहोगे।'

व्यासजीके उपदेशके बाद भी जब शुकदेवजीको शान्ति नहीं मिली, तब उन्होंने कहा—'बेटा! तुम जनकजीके पास मिथिलापुरीमें जाओ। वे जीवन्मुक्त ब्रह्मज्ञानी हैं। वहाँ तुम्हारा अज्ञान दूर हो जायगा। तदनन्तर तुम यहाँ लौट आना और सुखपूर्वक मेरे आश्रममें निवास करना।'

व्यासजीके आदेशसे शुकदेवजी मिथिला पहुँचे। वहाँ द्वारपालने उन्हें रोक दिया, तब काठकी भाँति मुनि वहीं खड़े हो गये। उनके ऊपर मान-अपमानका कोई असर नहीं पड़ा। कुछ समय बाद राजमन्त्री उन्हें विलासभवनमें ले गये। वहाँ शुकदेवजीका विधिवत् आतिथ्य सत्कार किया गया, किन्तु शुकदेवजीका मन वहाँ भी विकारशून्य बना रहा। अन्तमें उन्हें महाराज जनकके समक्ष प्रस्तुत किया गया। महाराज जनकने उनका आतिथ्य सत्कार करनेके बाद पूछा—'महाभाग! आप बड़े निःस्पृह महात्मा हैं। किस कार्यसे आप यहाँ पधारे हैं, बतानेकी कृपा करें।'

शुकदेवजी बोले—'राजन्! मेरे पिता व्यासजीने मुझे विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी आज्ञा दी है। मैंने उसे बन्धनकारक समझकर अस्वीकार कर दिया। मैं संसार-बन्धनसे मुक्त होना चाहता हूँ। आप मेरा मार्गदर्शन करनेकी कृपा करें।'

महाराज जनकने कहा—'परंतप! मनुष्योंको बन्धनमें डालने और मुक्त करनेमें केवल मन ही कारण है। विषयी मन बन्धन और निर्विषयी मन मुक्तिका प्रदाता है। अविद्याके कारण ही जीव और ब्रह्ममें भेदबुद्धिकी प्रतीति होती है। महाभाग! अविद्या विद्या अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे शान्त होती है। यह देह मेरी है, यही बन्धन है और यह देह मेरी नहीं है, यही मुक्ति है। बन्धन शरीर और घरमें नहीं है, अहंता और ममतामें है।' जनकजीके उपदेशसे शुकदेवजीकी सारी शंकाएँ नष्ट हो गयीं। वे पिताके आश्रममें लौट आये। फिर उन्होंने पितरोंकी सुन्दरी कन्या पीवरीसे विवाह करके गृहस्थाश्रमके नियमोंका पालन किया, तदनन्तर संन्यास लेकर मुक्ति प्राप्त किया।

भगवती महिषासुरमर्दिनी

पूर्वकालकी बात है। रम्भ दानवको महिषासुर नामक एक प्रबल पराक्रमी तथा अमित बलशाली पुत्र हुआ। उसने अमर होनेकी इच्छासे ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी कठिन तपस्या की। उसकी दस हजार वर्षोंकी तपस्याके बाद लोकपितामह ब्रह्मा प्रसन्न हुए। वे हंसपर बैठकर महिषासुरके निकट आये और बोले—'वत्स! उठो, अब तुम्हारी तपस्या सफल हो गयी। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। इच्छानुसार वर माँगो।' महिषासुरने उनसे अमर होनेका वर माँगा।

ब्रह्माजीने कहा—'पुत्र! जन्मे हुए प्राणीका मरना और मरे हुए प्राणीका जन्म लेना सुनिश्चित है। अतएव एक मृत्युको छोड़कर, जो कुछ भी चाहो, मैं तुम्हें प्रदान कर सकता हूँ।' महिषासुर बोला—'प्रभो! देवता, दैत्य, मानव किसीसे मेरी मृत्यु न हो। किसी स्त्रीके हाथसे मेरी मृत्यु निश्चित करनेकी कृपा करें।' ब्रह्माजी 'एवमस्तु' कहकर अपने लोक चले गये।

वर प्राप्त करके लौटनेके बाद समस्त दैत्योंने प्रबल पराक्रमी महिषासुरको अपना राजा बनाया। उसने दैत्योंकी विशाल वाहिनी लेकर पाताल और मृत्युलोकपर धावा बोल दिया। समस्त प्राणी उसके अधीन हो गये। फिर उसने इन्द्रलोकपर आक्रमण किया। इस युद्धमें भगवान् विष्णु और शिव भी देवराज इन्द्रकी सहायताके लिये आये, किन्तु महाबली महिषासुरके सामने सबको पराजयका मुख देखना पड़ा और देवलोकपर भी महिषासुरका अधिकार हो गया।

भगवान् शंकर और ब्रह्माको आगे करके सभी देवता भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और महिषासुरके आतंकसे छुटकारा प्राप्त करनेका उपाय पूछा। भगवान् विष्णुने कहा—'देवताओ! ब्रह्माजीके वरदानसे महिषासुर अजेय हो चुका है। हममेंसे कोई भी उसे नहीं मार सकता है। आओ ! हम सभी मिलकर सबकी आदि कारण भगवती महाशक्तिकी आराधना करें।' फिर सभी लोगोंने मिलकर भगवतीकी आर्तस्वरमें प्रार्थना की। सबके देखते-देखते ब्रह्मादि सभी देवताओंके शरीरोंसे दिव्य तेज निकलकर एक परम सुन्दरी स्त्रीके रूपमें प्रकट हुआ। भगवती महाशक्तिके अद्भुत तेजसे सभी देवता आश्चर्यचकित हो गये। हिमवान्ने भगवतीके सवारीके लिये सिंह दिया तथा सभी देवताओंने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र महामायाकी सेवामें प्रस्तुत किये। भगवतीने देवताओंपर प्रसन्न होकर उन्हें शीघ्र ही महिषासुरके भयसे मुक्त करनेका आश्वासन दिया।

पराम्बा महामाया हिमालयपर पहुँचीं और अट्टहासपूर्वक घोर गर्जना कीं। उस भयंकर शब्दको सुनकर दानव डर गये और पृथ्वी काँप उठी। महिषासुरने देवीके पास अपना दूत भेजा। दूतने कहा—'सुन्दरी! मैं महिषासुरका दूत हूँ। मेरे स्वामी त्रैलोक्यविजयी हैं। वे तुम्हारे अतुलनीय सौन्दर्यके पुजारी बन चुके हैं और तुमसे विवाह करना चाहते हैं। देवि! तुम उन्हें स्वीकार करके कृतार्थ करो।'

भगवतीने कहा—'मूर्ख! मैं सम्पूर्ण सृष्टिकी जननी और महिषासुरकी मृत्यु हूँ। तू उससे जाकर यह कह दे कि वह तत्काल पाताल चला जाय, अन्यथा युद्धमें उसकी मृत्यु निश्चित है।'

दूतने अपने स्वामी महिषासुरको देवीका संदेश दिया। भयंकर युद्ध छिड़ गया। एक-एक करके महिषासुरके सभी सेनानी देवीके हाथोंसे मृत्युको प्राप्त हुए। महिषासुरका भी भगवतीके साथ महान् संग्राम हुआ। उस दुष्टने नाना प्रकारके मायिक रूप बनाकर महामायाके साथ युद्ध किया। अन्तमें भगवतीने अपने चक्रसे महिषासुरका मस्तक काट दिया। देवताओंने भगवतीकी स्तुति की और भगवती महामाया प्रत्येक संकटमें देवताओंका सहयोग करनेका आश्वासन देकर अन्तर्धान हो गयीं।
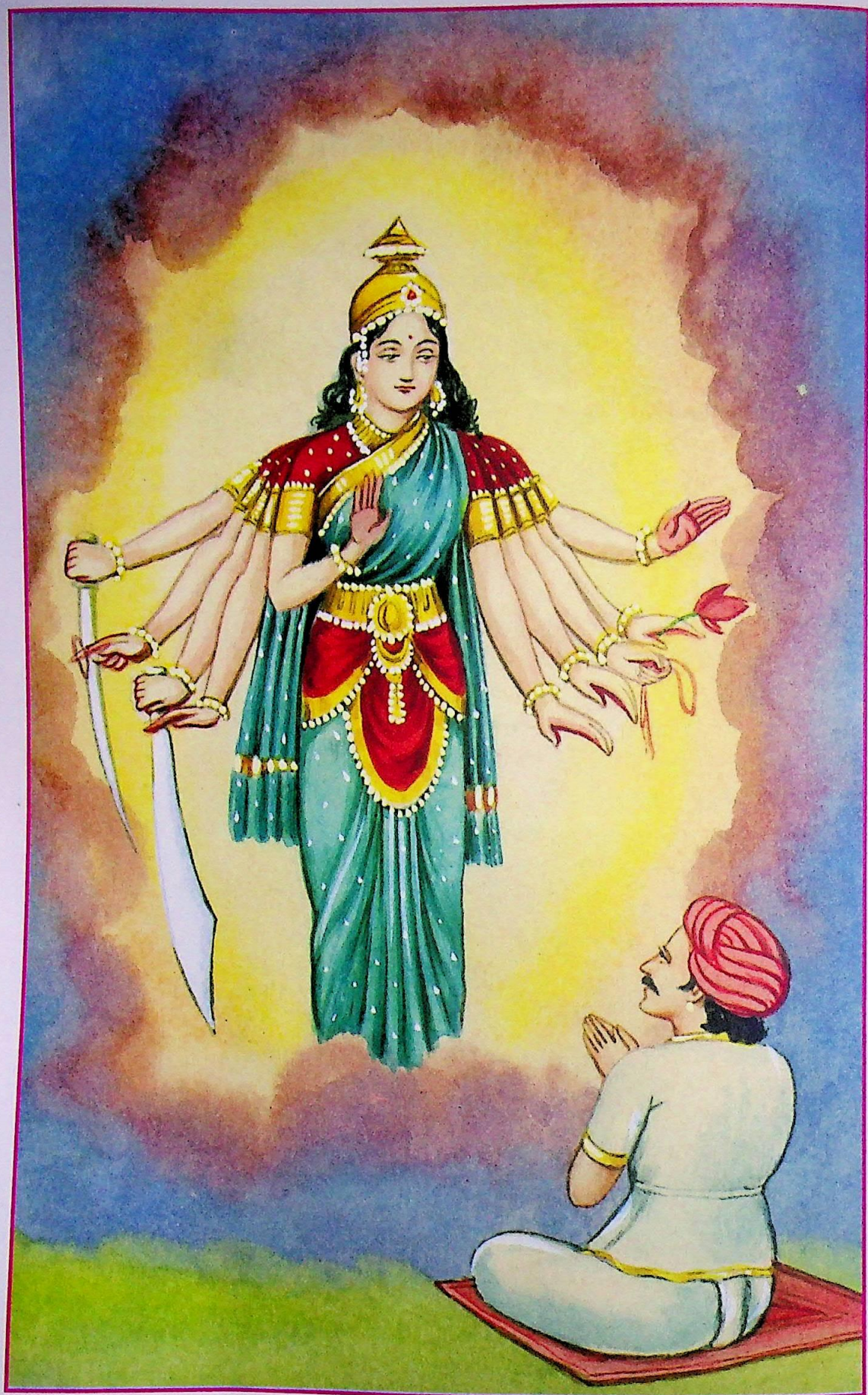
राजा सुरथ एवं समाधि वैश्यको देवी-दर्शन

प्राचीन समयकी बात है। स्वारोचिष मन्वन्तरमें सुरथ नामके एक परम धार्मिक राजा थे। वे परम उदार थे तथा प्रजाका पुत्रवत् पालन करते थे। दुर्योगवश उनके मन्त्री शत्रुओंसे मिल गये और शत्रुओंने उन्हें पराजित करके उनका राज्य छीन लिया। निराश होकर राजा सुरथ वनमें चले गये। एक दिन वे भूख-प्याससे व्याकुल अवस्थामें परम तपस्वी सुमेधा मुनिके आश्रममें पहुँचे। मुनिके पूछनेपर उन्होंने अपनी सम्पूर्ण कथा बतायी। दयालु मुनिने उनका यथोचित सत्कार किया और उन्हें आश्रममें आश्रय प्रदान किया।

एक दिन महाराज सुरथ एक वृक्षके नीचे बैठकर अपने खोये हुए राज्य एवं परिवारके विषयमें चिन्तन कर रहे थे। इतनेमें ही वहाँ एक वैश्य पहुँचा। उसका नाम समाधि था। उसके पुत्रोंने उसकी सम्पत्ति छीन लिया था और उसे घरसे निकाल दिया था। परस्पर समान दुःखसे दुःखी होनेके कारण थोड़ी ही देरमें राजा और वैश्यमें प्रगाढ़ मैत्री हो गयी। फिर दोनों अपने शोक-निवारणका उपाय पूछनेके लिये सुमेधा मुनिके पास गये। उस समयमें वे परमादरणीय ऋषि आसन लगाकर शान्त बैठे थे। राजा और वैश्यने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने कल्याणका उपाय पूछा।

सुमेधा मुनिने कहा—'वत्स! कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि मन, वचन और कर्मसे भगवती महामायाकी आराधना करें। भगवती आदिशक्तिकी आराधनासे मनुष्यकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भगवतीकी कृपासे सुख, ज्ञान और मोक्ष सब कुछ सहज ही सुलभ हो जाता है। भगवतीकी प्रसन्नताके लिये नवरात्र-व्रत, भगवतीका पूजन, नवार्ण-मन्त्रका जप तथा हवन करना चाहिये। नवरात्र-व्रत सम्पूर्ण व्रतोंमें श्रेष्ठ है। इस व्रतको करनेसे प्राणी समस्त सुखोंके भागी हो जाते हैं। तुम दोनोंको विधिपूर्वक भगवती महामायाकी आराधना करनी चाहिये। भगवतीकी कृपासे तुम्हारी विघ्न-बाधाएँ दूर हो जायँगी। भगवतीकी भक्ति ही संसारके समस्त रोगोंकी परम औषधि तथा संसार-सागरसे उद्धारका सर्वोत्तम मार्ग है।'

इस प्रकार सुमेधा मुनिसे उपदेश प्राप्त करके राजा सुरथ और समाधि वैश्य एक श्रेष्ठ नदीके तटपर गये, वहाँ उन्होंने एक निर्जन स्थानपर बैठकर भगवतीके मन्त्रका जप और ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया। तपस्या करते हुए एक वर्षका समय पूरा हो गया। अबतक वे कुछ फलाहार करके जप और ध्यान करते थे। दूसरे वर्ष उन लोगोंने सूखे पत्ते खाकर तपस्या की। तीसरे वर्षकी तपस्यामें उन्होंने सूखे पत्तों और जलका भी त्याग कर दिया। राजा सुरथ और समाधि वैश्यके कठिन तपसे प्रसन्न होकर महामाया भगवतीने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया और कहा—'तुम दोनोंकी तपस्यासे मैं संतुष्ट हो गयी हूँ। तुम्हारे मनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये मैं तत्पर हूँ। भक्तो! वर माँगो।'

देवीकी बात सुनकर राजा सुरथका सर्वाङ्ग प्रसन्नतासे खिल गया। उन्होंने भगवतीसे अपने शत्रुओंके विनाशके साथ निष्कंटक राज्यकी याचना की। भगवतीने कहा—'राजन्! अब तुम घर लौट जाओ। तुम्हारे शत्रु तुम्हारा राज्य छोड़कर लौट जायँगे। दस हजार वर्षोंतक अखिल भूमण्डलका राज्य करनेके बाद अगले जन्ममें तुम सूर्यके यहाँ जन्म लेकर मनुके पदको प्राप्त करोगे।'

सुरथ वैश्यने भगवतीसे भव-बन्धनसे मुक्त करनेवाले विशुद्ध ज्ञानकी माँग की। भगवतीने 'एवमस्तु' कहकर वैश्यको भी तृप्त कर दिया। इस प्रकार राजा सुरथ भगवतीके कृपाप्रसादसे समुद्रपर्यन्त समस्त पृथ्वीका राज्य भोगने लगे और समाधि वैश्य ज्ञान प्राप्त करके मुक्तिपथके पथिक बने। भगवतीके पावन कृपाके इस प्रसंगको पढ़ने और मनन करनेसे ज्ञान, मोक्ष, यश, सुख—सभी उपलब्ध हो जाते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

1647/2A
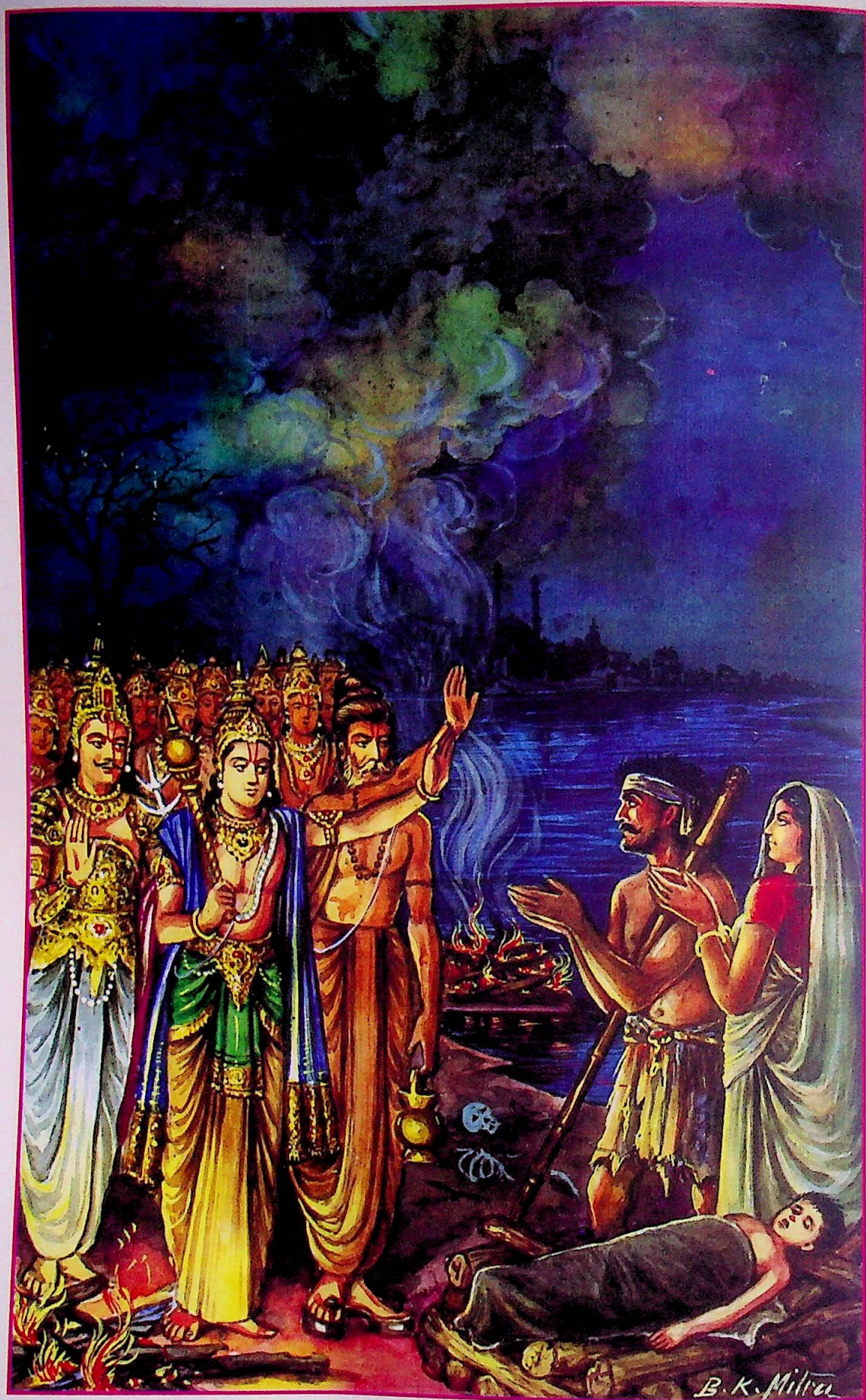
सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र

त्रिशंकुके पुत्र महाराज हरिश्चन्द्र भगवती शाकम्भरीके परम भक्त एवं अद्भुत सत्यवादी थे। एक बार वे शिकार खेलनेके लिये जंगलमें गये। वहाँ उन्हें विलाप करती हुई एक सुन्दरी स्त्री मिली। महाराजके द्वारा रोनेका कारण पूछनेपर उसने कहा कि 'मैं विश्वामित्रके कारण अत्यन्त दुःखी हूँ। वे तपस्या कर रहे हैं। यदि आप मुझे सुखी करना चाहते हैं तो किसी उपायसे उन्हें तपस्यासे विरत करनेकी कृपा करें।' महाराजने उसे आश्वस्त करके घर भेज दिया और विश्वामित्र मुनिको तपस्या करनेसे रोक दिया। महाराज हरिश्चन्द्रकी इस क्रियासे विश्वामित्र क्रोधित हो गये और वे तपस्या छोड़कर अपने स्थानको चले गये। अपने अपमानका बदला लेनेके लिये उन्होंने भयंकर सूकरके रूपमें एक दानवको हरिश्चन्द्रके नगरमें भेजा। उस भयानक सूकरने नगरमें पहुँचकर महाराजके उपवनको उजाड़ डाला। महाराज हरिश्चन्द्रने उस भयंकर सूकरको मारनेके लिये उसका पीछा किया। वनमें पहुँचकर वह सूकर अदृश्य हो गया और महाराज मार्ग भूल गये। अचानक एक ब्राह्मणके वेशमें विश्वामित्र प्रकट हुए और उन्होंने गान्धर्वी मायासे महाराज हरिश्चन्द्रको मोहित कर दिया। उन्होंने एक कन्या और पुत्रके विवाहके बहाने अयोध्याका सम्पूर्ण राज्य महाराज हरिश्चन्द्रसे दानमें ले लिया।

दक्षिणाके लिये महाराज हरिश्चन्द्रको काशीमें पहुँचकर पत्नी तथा स्वयंको बेच देना पड़ा। महारानी शैव्या एक ब्राह्मणकी दासी बनीं। बड़ी कठिनाईसे उस ब्राह्मणने उनके पुत्र रोहिताश्वको साथ रखनेकी अनुमति प्रदान की। महाराज हरिश्चन्द्रने अपने-आपको चाण्डालके हाथों बेचकर विश्वामित्रकी दक्षिणा चुकायी। अब वे श्मशानमें शवदाह करनेवालोंसे कर वसूला करते थे, किंतु विपत्ति यहीं समाप्त नहीं हुई। एक दिन ब्राह्मणकी समिधा एकत्र करके लाते समय रोहिताश्वको सर्पने डँस लिया। महारानी शैव्या पुत्रकी मृत्युका समाचार सुनकर शोक-सागरमें डूब गयीं। बहुत अनुनय-विनय करनेपर ब्राह्मणने घरका सारा काम निपटानेके बाद रात्रिमें उन्हें पुत्रके अन्त्येष्टि कर्म करनेकी अनुमति प्रदान की। जिस समय वे अपने प्राणप्रिय पुत्रकी लाशसे लिपटकर विलाप कर रही थीं, गाँववालोंने महारानीको बच्चेको खा जानेवाली डायन समझा और उन्हें पकड़कर चाण्डालके न्यायालयमें प्रस्तुत किया। चाण्डालने हरिश्चन्द्रको ही रानीका मस्तक काटनेका आदेश दिया। शोकसे ग्रस्त महारानीने पुत्रकी लाश श्मशानमें जलानेतककी अनुमति माँगी।

घोर अन्धकारमयी रात्रिमें श्मशान पहुँचनेपर अचानक बिजली चमकी और उसके प्रकाशमें महाराज हरिश्चन्द्रने पत्नी और पुत्रको पहचान लिया। शोकसे व्याकुल होकर पति-पत्नी दोनों अचेत होकर गिर पड़े। चेत होनेपर राजा और रानी दोनोंने ही पुत्रके साथ ही आत्मदाह करनेका निश्चय किया। महाराज हरिश्चन्द्रने चिता तैयार की और उसपर अपने पुत्र रोहितको सुला दिया। आत्मदाहके पूर्व पति-पत्नी दोनों जगत्की अधिष्ठात्री भगवती भुवनेश्वरीका ध्यान करने लगे। अचानक श्मशान दिव्य ज्योतिसे आलोकित हो उठा। भगवान् नारायणके सहित सम्पूर्ण देवता श्मशान भूमिमें पधारे। स्वर्गसे अमृतकी वर्षा हुई और रोहित स्वस्थ होकर उठ बैठे।

इन्द्रने कहा—'महाराज! अब आप पत्नीसहित स्वर्गको सुशोभित करें। यह सर्वोत्कृष्ट गति आपके ही कर्मोंका फल है। पुण्यात्मा पुरुष ही उस पदके अधिकारी हैं।'

चाण्डालने कहा—'राजन्! आपने अपनी सेवासे मुझे सन्तुष्ट कर दिया है। अब आप स्वतन्त्र हैं।' हरिश्चन्द्रने देखा कि उनका स्वामी चाण्डाल और कोई नहीं साक्षात् धर्मराज हैं। विश्वामित्रने अयोध्याका राज्य महाराज हरिश्चन्द्रको वापस कर दिया और कुमार रोहिताश्वका अयोध्याके राज्यपदपर अभिषेक हुआ। अन्तमें महाराज हरिश्चन्द्रने पत्नी और अयोध्याकी प्रजाके साथ स्वर्गके लिये प्रस्थान किया।

भगवती (शताक्षी) शाकम्भरी

प्राचीन समयकी बात है। दुर्गम नामका एक महान् दैत्य था। उसका जन्म हिरण्याक्षके कुलमें हुआ था तथा उसके पिताका नाम रुरु था। 'देवताओंका बल वेद है। वेदके लुप्त हो जानेपर देवता भी नहीं रहेंगे'—ऐसा सोचकर दुर्गमने ब्रह्माजीसे वर पानेकी इच्छासे उनकी प्रसन्नताके लिये बड़ी कठोर तपस्या की। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उसे दर्शन दिया और उससे इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा। दुर्गमने ब्रह्माजीसे कहा—'पितामह! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे सम्पूर्ण वेद देनेकी कृपा करें और देवताओंको परास्त करनेकी शक्ति भी दें।'

दुर्गमकी बात सुनकर चारों वेदोंके अधिष्ठाता ब्रह्माजी 'ऐसा ही हो' कहकर अपने लोक चले गये। इसके परिणामस्वरूप ब्राह्मणोंको समस्त वेद विस्मृत हो गये। स्नान, श्रद्धा, होम, श्राद्ध, यज्ञ और जप आदि वैदिक क्रियाएँ नष्ट हो गयीं। सारे संसारमें घोर अनर्थ उत्पन्न करनेवाली अत्यन्त भयंकर स्थिति हो गयी। देवताओंको हविका भाग मिलना बन्द हो गया, जिससे वे निर्बल हो गये। उसी समय उस भयंकर दैत्यने अपनी सेनाके साथ देवताओंकी पुरी अमरावतीको घेर लिया। दुर्गमका शरीर वज्रके समान कठोर था। देवता उसके साथ युद्ध करनेमें असमर्थ होनेके कारण भागकर गुफाओंमें छिप गये और भगवतीकी आराधनामें समय बिताने लगे। अग्निमें हवन न होनेके कारण वर्षा भी बन्द हो गयी। पृथ्वीपर लोग एक-एक बूँद जलके लिये तरसने लगे। घोर अकाल और अनावृष्टिके कारण लोगोंके प्राण संकटमें पड़ गये।

संसारको घोर संकटसे बचानेके लिये ब्राह्मणलोग हिमालयपर्वतपर गये और मनको एकाग्र करके पराम्बा भगवतीकी उपासना करने लगे। लोककल्याणके लिये तपस्यारत ब्राह्मणोंपर भगवती प्रसन्न हुईं। उन्होंने अनन्त आँखोंसे सम्पन्न दिव्य रूपमें उनको दर्शन दिया। भगवतीका वह विग्रह कज्जलके पर्वतकी तुलना कर रहा था। आँखें ऐसी थीं, मानो नीलकमल हों। कंधे ऊपर उठे हुए थे। विशाल वक्षःस्थल था। हाथोंमें बाण, कमलके पुष्प, पल्लव और मूल सुशोभित थे। भगवतीने शाक आदि खाद्य पदार्थ तथा अनन्त रसवाले फल ले रखा था। विशाल धनुष देवीकी शोभामें वृद्धि कर रहा था। सम्पूर्ण सुन्दरताका सारभूत देवीका वह रूप बड़ा कमनीय था। करोड़ों सूर्योंके समान चमकनेवाला वह विग्रह करुणाका अथाह समुद्र था। करुणार्द्रहृदया भगवती अपनी अनन्त आँखोंसे सहस्त्रों जलधाराओंकी वृष्टि करने लगीं। उनके नेत्रोंसे निकले हुए जलसे नौ राततक घनघोर वृष्टि हुई। उस पवित्र जलसे सम्पूर्ण संसार तृप्त हो गया। नदी और समुद्रमें बाढ़ आ गयी। छिपकर रहनेवाले देवता अब बाहर निकल आये।

देवताओं और ब्राह्मणोंने भगवतीकी स्तुति करते हुए कहा—'अपनी मायासे संसारकी संरचना करनेवाली, भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष एवं लोककल्याणके लिये दिव्य विग्रह धारण करनेवाली भगवति! तुम्हें कोटिशः प्रणाम है। तुमने सहस्त्रों नेत्रोंसे जलवृष्टि करके इस संसारका महान् कल्याण किया है। अतः तुम्हारा यह स्वरूप 'शताक्षी' नामसे विख्यात होगा। अम्बिके! हम सब भूखसे अत्यन्त पीड़ित हैं, अतः तुम्हारी विशेष स्तुति करनेमें असमर्थ हैं।' भगवती शताक्षीने प्रसन्न होकर ब्राह्मणों एवं देवताओंको अपने हाथोंसे दिव्य फल एवं शाक खानेके लिये दिये तथा भाँति-भाँतिके अन्न भी उपस्थित कर दिये। पशुओंके खानेयोग्य कोमल एवं अनेक रसोंसे सम्पन्न नवीन तृण भी उन्हें देनेकी कृपा की। उसी दिनसे भगवतीका एक नाम 'शाकम्भरी' भी प्रसिद्ध हुआ। दुर्गाके स्वरूपमें भगवतीने वेदोंको दुर्गम नामक दैत्यसे छीनकर ब्राह्मणोंको देनेका आश्वासन भी दिया।

भगवतीके 'दुर्गा' नामका इतिहास

भगवती शताक्षीके द्वारा संसार एवं देवताओंकी सुरक्षा और संरक्षणकी बात सुनकर दुर्गम दैत्य अत्यन्त कुपित हुआ। वह अपनी सेनाके साथ अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर भगवतीसे युद्ध करनेके लिये चल पड़ा। उसके पास एक अक्षौहिणी सेना थी। देवताओंकी सारी सेना घेरकर वह दैत्य भगवतीके सामने खड़ा हो गया। भगवती शिवाने ब्राह्मणों और देवताओंके चारों ओर तेजोमय चक्र खड़ा कर दिया और स्वयं बाहर निकल आयीं।

देवी एवं दुर्गम दैत्यके बीच भयंकर संग्राम प्रारम्भ हो गया। दोनों ओरकी बाण-वर्षासे सूर्य-मण्डल ढक गया। देवीके श्रीविग्रहसे बहुत-सी उग्र शक्तियाँ प्रकट हुईं। कालिका, तारिणी, बाला, त्रिपुरा, भैरवी, रमा, बगला, मातङ्गी, त्रिपुरसुन्दरी, कामाक्षी, तुलजा, जम्भिनी, मोहिनी, गुह्यकाली और दश-सहस्त्रबाहुका आदि नामवाली बत्तीस शक्तियाँ उत्पन्न हुईं। तदनन्तर चौंसठ और फिर अनगिनत शक्तियोंका प्रादुर्भाव हुआ। उन शक्तियोंने दानवोंकी बहुत-सी सेना नष्ट कर दी। फिर दुर्गम स्वयं शक्तियोंके सामने उपस्थित होकर उनसे युद्ध करने लगा। दस दिनोंके युद्धमें उस दैत्यकी सम्पूर्ण सेनाका संहार हो गया था। इसलिये वह क्रोध और अमर्षसे भरा हुआ था। थोड़े ही समयमें उस महापराक्रमी दैत्यने देवीकी सम्पूर्ण शक्तियोंपर विजय प्राप्त कर ली। तदनन्तर वह पराम्बा भगवतीके सामने अपना रथ ले आया। अब भगवती जगदम्बा और दुर्गम दैत्यके बीच भीषण युद्ध होने लगा। हृदयको आतङ्कित करनेवाला यह भयंकर युद्ध दोपहरतक चलता रहा। इसके बाद देवीने दुर्गमपर पन्द्रह बाणोंका प्रहार किया। दुर्गमके रथके चार घोड़े देवीके चार बाणोंके लक्ष्य हुए। एक बाण सारथिको लगा। एक बाणने दुर्गमके रथकी ध्वजा काट दी। दो बाणोंने दुर्गमके दोनों नेत्र और दोनों भुजाओंको बींध दिया। जगदम्बाके पाँच बाणोंने उस दैत्यकी छातीको विदीर्ण कर दिया। अन्तमें वह दैत्य रक्त वमन करता हुआ धरतीपर गिर पड़ा। उसके शरीरसे एक तेज निकलकर भगवतीके रूपमें समा गया। उस महान् पराक्रमी दैत्यके मारे जानेसे सभी लोग सुखी हो गये।

भगवान् विष्णु और शिवको आगे करके समस्त देवता भगवती जगदम्बाकी स्तुति करते हुए कहने लगे—'सम्पूर्ण जगत्‌की एकमात्र कारण परमेश्वरि! शतलोचने! तुम्हें बार-बार नमस्कार है। जो दिव्य विग्रहसे सुशोभित हैं एवं जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु आदिको प्रकट किया है, उन भगवती भुवनेश्वरीके चरणोंमें हम सर्वतोभावसे मस्तक झुकाते हैं। करुणाकी असीम सागर भगवती शाकम्भरी तुम्हारी जय हो।' आपने दुर्गमको मारकर देवताओंका संकट निवारण किया है, इसके लिये हम सभी देवता आपके प्रति हृदयसे कृतज्ञ हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंके स्तवन एवं पूजनसे भगवती जगदम्बा संतुष्ट हो गयीं। उन्होंने दुर्गमासुरसे छीने हुए वेदोंको देवताओंको सौंप दिया। तदनन्तर उन्होंने ब्राह्मणोंसे कहा—'जिसके अभावमें ऐसा अनर्थकारी समय उपस्थित हो गया था, वह वेदवाणी मेरे शरीरसे ही प्रकट हुई थी, अतः सब प्रकारसे इसकी रक्षा करनी चाहिये। मेरी पूजामें संलग्न रहना तुम्हारा परम कर्तव्य है। तुम्हारे कल्याणके लिये इससे श्रेष्ठ कोई उपाय नहीं है। मेरे हाथसे दुर्गम नामक दैत्यका वध हुआ है। अतः आजसे मेरा एक नाम 'दुर्गा' प्रसिद्ध होगा। करुणाका स्वरूप होनेके कारण मैं 'शताक्षी' भी कहलाती हूँ। जो व्यक्ति मेरे इन नामोंका कीर्तन करता है, वह मायाके बन्धनको तोड़कर मेरा स्थान प्राप्त करता है।' इस प्रकार भगवती दुर्गा देवताओं और ब्राह्मणोंको उपदेश देकर अन्तर्धान हो गयीं।
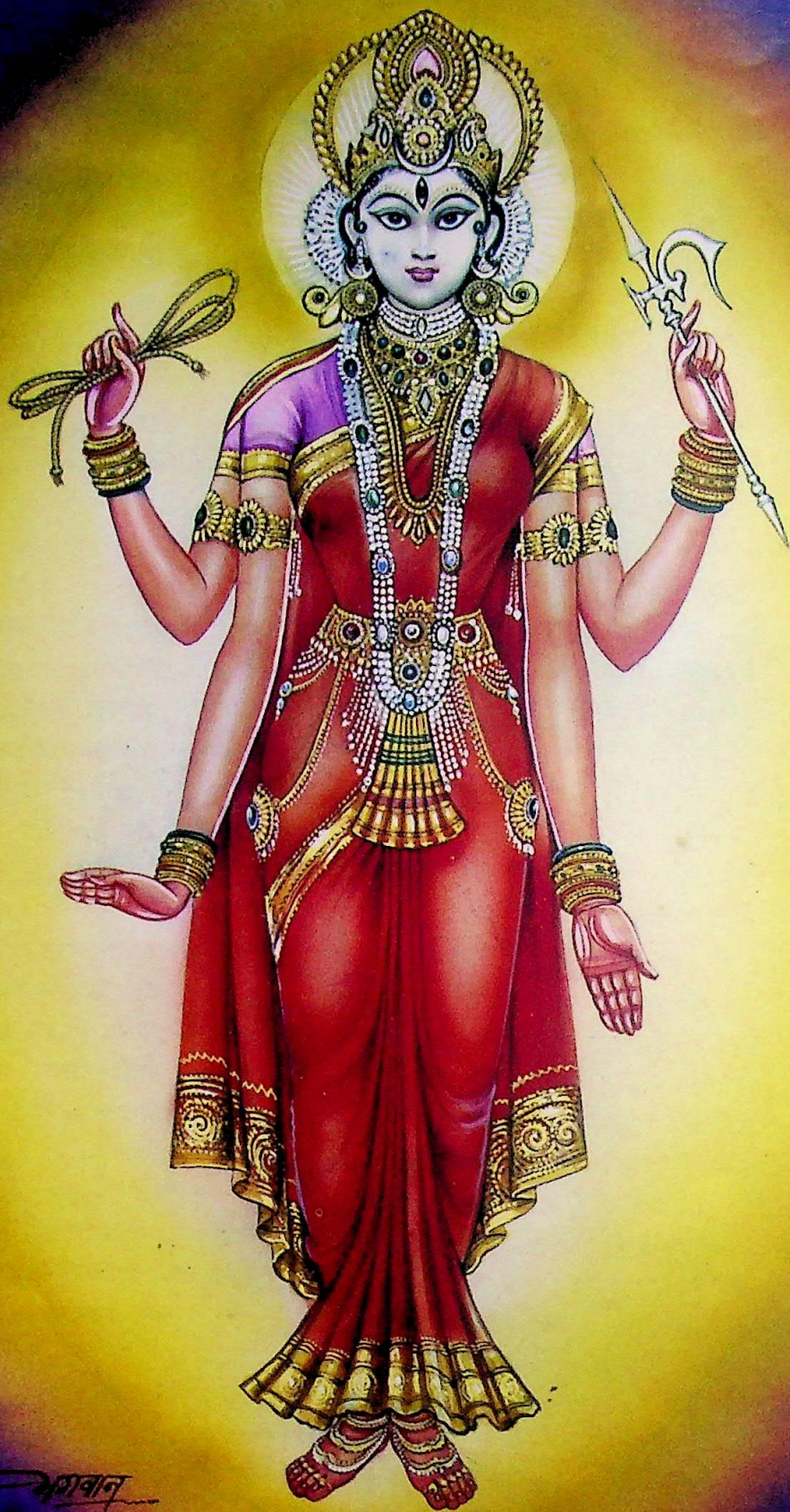
उमा (हैमवती) देवी

भगवती सतीके दक्षयज्ञमें आत्मदाह कर देनेके बाद भगवान् शिव समाधिस्थ हो गये। उसी समय तारक नामक एक प्रसिद्ध असुर हुआ। उसकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उसे भगवान् शंकरके औरस पुत्रके हाथसे मृत्यु होनेका वर दे दिया। वरके प्रभावसे तारकासुरने त्रिभुवनको जीत लिया। देवता बेचारे इधर-उधर मारे-मारे फिरने लगे। सतीके शरीरत्याग और भगवान् शिवके समाधिस्थ हो जानेसे उनके औरस पुत्रकी उत्पत्ति असम्भव थी, अतः तारकासुर अमर होकर देवलोकका शासन करने लगा। सभी देवगण मिलकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और उन्हें अपनी करुण कथा सुनायी। भगवान् विष्णुने देवताओंसे कहा—'तुम लोगोंको चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवती शिवा कामनाओंको पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्ष हैं। मणिद्वीपमें विराजनेवाली वे देवी सोयी नहीं हैं। हमलोगोंके दोषके कारण ही जगदम्बाने हमारी उपेक्षा कर रखी हैं। उनका यह कार्य केवल हमें शिक्षा देनेके लिये है। पुत्रसे तो पद-पदपर अपराध हुआ करते हैं। एक माताके अतिरिक्त उन अपराधोंको सहने और क्षमा करनेकी शक्ति अन्य किसीके पास नहीं है । हम सभी लोगोंको अत्यन्त शीघ्र हिमालयपर चलकर भगवतीकी आराधना करनी चाहिये। कपटसे शून्य होकर शान्त मनसे आराधना करनेपर भगवती तुम्हारे मनोरथ अवश्य सिद्ध करेंगी।'

भगवान् विष्णुकी सलाह मानकर सभी देवता उनके साथ गिरिराज हिमालयपर पहुँचे और माया बीजका जप करते हुए भगवतीकी आराधनामें तन्मय हो गये। बहुत समयतक उपासना करनेके बाद देवताओंपर भगवती महामाया प्रसन्न हुईं। तदनन्तर देवताओंके समक्ष एक दिव्य तेज प्रकट हुआ। उस तेजके प्रकट होते ही देवताओंकी आँखें मुँद गयीं। धैर्य धारण करके देवताओंने जब पुनः आँखें खोलीं तो उनके समक्ष भगवती प्रकट हुईं। मोतीकी दिव्य माला उनके गलेकी शोभा बढ़ा रही थी। उनके मस्तकपर रत्नमय मुकुट था। वर, अंकुश, पाश और अभय मुद्रासे युक्त उनकी चार भुजाएँ थीं। उनका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिला हुआ था। करुणाकी साकार मूर्ति भगवती जगदम्बाका दर्शन करके देवताओंके रोम-रोम प्रसन्नतासे खिल गये। सभी लोगोंने भगवतीकी श्रद्धापूर्ण एवं विनीत वाणीमें नाना प्रकारसे स्तुति की।

स्नेहसे विह्वल होकर भगवती बोलीं—'देवताओ! मैं तुमपर परम प्रसन्न हूँ। भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये मैं कल्पवृक्ष हूँ। मैं अपने भक्तोंका इस दुःखमय संसार-सागरसे उद्धार कर देती हूँ। तुमलोग अपना प्रयोजन बताओ। मैं उसे अवश्य सिद्ध करूँगी।'

देवताओंने कहा—'परमेश्वरि! तारक नामक महान् दैत्य हमारे दुःखका कारण बना हुआ है। भगवान् शंकरके औरस पुत्रके द्वारा ब्रह्माजीने उसकी मृत्युका वर दिया है। भगवति! हमारे कल्याणके लिये जो उपाय उचित हो, उसे करनेकी कृपा करो।'

भगवतीने कहा—'देवताओ! गौरी नामसे विख्यात मेरी शक्ति हिमालयके घर प्रकट होगी। आप लोग ऐसा प्रयत्न करें, जिससे भगवान् शिवके साथ उसका सम्बन्ध हो जाय। फिर भगवान् शिवके यहाँ देवसेनापति कार्तिकेयका जन्म होगा और उन्हींके द्वारा आप लोगोंका संकट-निवारण होगा, तारकासुर मारा जायगा एवं अमरावतीका राज्य इन्द्रको वापस मिलेगा।' इस प्रकार कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं। समय आनेपर भगवती पार्वतीका हिमवान्‌के यहाँ प्राकट्य हुआ और उनका शिवके साथ विवाह हुआ। कार्तिकेयका जन्म हुआ! देवताओंने उनका देवसेनापतिके रूपमें अभिषेक किया। तदनन्तर कार्तिकेय और तारकासुरके बीच भयंकर संग्राम हुआ। अन्तमें तारकासुर मारा गया और देवताओंको स्वर्गका राज्य प्राप्त हुआ। इस प्रकार तारकासुरके अत्याचारसे देवताओंको मुक्ति मिली।'

परात्पर भगवान् श्यामसुन्दर एवं मूल प्रकृति राधा

भगवान् श्रीकृष्ण ही परम पुरुष तथा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परमात्मा हैं। सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म श्रीकृष्ण ही स्वयं दो रूपोंमें प्रकट होते हैं। उस समय निराकार तथा ज्योति:स्वरूप श्रीकृष्णका दाहिना अङ्ग पुरुष तथा बाया अङ्ग प्रकृतिके रूपमें प्रकट होता है। भगवान् श्रीकृष्णका निराकार रूप योगियोंके द्वारा सदा ध्येय है। इनका साकार विग्रह भक्तोंके लिये परम आनन्दमय है। जब इन्हें साकार रूपमें प्रकट होनेकी इच्छा होती है, तब ये मनको मुग्ध करनेवाला परम मनोहर विग्रह प्रकट करते हैं। इनका साकार विग्रह चिन्मय तथा सुन्दरताका पुञ्ज है। इनके विशाल नेत्र शरत्कालके खिले हुए कमलकी भाँति सुन्दर तथा इनका विग्रह श्याम है। इनका मुकुट मोरपंखसे सुशोभित है। मालतीकी माला इनके कण्ठकी शोभा बढ़ाती है। इनकी नासिका अत्यन्त सुन्दर है तथा इनका मुख सदैव स्मितहाससे युक्त रहता है। परम मनोहर भगवान् श्रीकृष्ण मात्र भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही पधारते हैं। प्रज्वलित अग्निके समान विशुद्ध पीताम्बर धारण करनेके कारण इनका विग्रह परम मनोहर दिखायी देता है। इनकी दोनों भुजाएँ रत्नमय आभूषणोंसे भूषित रहती हैं। इनके हाथमें बाँसुरी सुशोभित है। भक्तोंको समस्त ऐश्वर्य प्रदान करना इनका सहज स्वभाव है। ये परम स्वतन्त्र तथा सम्पूर्ण मङ्गलोंके भण्डार हैं। इन्हीं देवाधिदेव सनातन प्रभुका वैष्णव पुरुष निरन्तर ध्यान करते हैं। इनकी कृपासे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय सब प्रभावरहित हो जाते हैं। ब्रह्माकी आयु भी इनके एक निमेषकी तुलनामें है अर्थात् इनके पलक झपकनेमें जितना समय लगता है, ब्रह्माकी सम्पूर्ण आयु उतनी ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण ही सबकी आत्मा तथा परब्रह्म कहलाते हैं। भक्तोंको भक्ति और दास्यभाव प्रदान करनेके कारण ही ये श्रीकृष्ण कहलाते हैं। यही चराचर जगत्के आदिस्त्रष्टा हैं। सर्वप्रथम परब्रह्म श्रीकृष्णने सृष्टि करनेका विचार किया। तदनन्तर इन्होंने अपने ही कमनीय विग्रहको दो भागोंमें विभक्त कर दिया। इनके वामांशको स्त्री और दक्षिणांशको पुरुष कहा गया। दक्षिणांश भगवान् श्रीकृष्णका साकार विग्रह है और वामांश मूल प्रकृति राधा हैं।

मूल प्रकृति राधाका विग्रह भी चिन्मय है। उनका शरीर विकसित कमलके समान अत्यन्त सुन्दर है। उनके गलेमें सुन्दर पुष्पोंका हार सुशोभित है। वे तिरछी दृष्टिसे प्रभुको निहारती रहती हैं। वे चकोरी बनकर श्रीकृष्णके रूपका अपने दिव्य चक्षुओंसे निरन्तर पान करती रहती हैं। रत्नमय आभूषण एवं दिव्य वस्त्र उनकी शोभाको और भी अधिक बढ़ाते रहते हैं। उन देवीके ललाटपर कस्तूरीकी बिन्दी सुशोभित है। उनका दिव्य विग्रह करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाको लज्जित करनेवाला है। वे अपनी मधुर चालसे राजहंस एवं गजराजके गर्वको भी नष्ट करनेवाली हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण परम रसिक एवं रासके स्वामी हैं। मूल प्रकृति राधा एवं श्रीकृष्णका रास जब ब्रह्माके एक दिनपर्यन्त चलता है तो राससे श्रमित राधाके श्रमबिन्दुसे ही सृष्टिका प्रारम्भ होता है। मूल प्रकृति भगवती राधाके शरीरके दिव्य प्रस्वेदसे ब्रह्माण्ड एवं नि:श्वाससे पञ्चप्राण जल एवं पृथ्वीका निर्माण होता है। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे मूल प्रकृति राधा ही सृष्टिकी आदि कारण बनती हैं। सृष्टिका उद्भव, पालन और संहार उनका मुख्य कार्य है। भक्तोंके लिये तो भगवती राधा वाञ्छाकल्पतरु हैं। प्रसन्न होकर वे भगवती धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सब कुछ प्रदान कर देती हैं।

बी.के. मित्र.

श्रीकृष्णके वामांशसे प्रकट राधा और श्रीकृष्णके द्वारा सृष्टि रचना

सृष्टिके आदिमें भगवान् श्रीकृष्णके वामांशसे प्रकट मूल प्रकृति राधा गर्भस्थितका अनुभव करने लगीं। सौ मन्वन्तरतक उनका शरीर ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहा। श्रीकृष्णके प्राणोंपर उस देवीका अधिकार था। श्रीकृष्णका वक्षःस्थल ही उनका स्थान था। सौ मन्वन्तरका समय व्यतीत हो जानेके बाद उस देवीसे सुवर्णके समान एक बालक उत्पन्न हुआ। देवीने उस बालकको ब्रह्माण्ड गोलकके अथाह जलमें छोड़ दिया। यही बालक महाविष्णुके नामसे प्रसिद्ध हुआ। मूल प्रकृतिके ही अंशसे सरस्वती और कमलाकी भी उत्पत्ति हुई।

कुछ समयके बाद भगवान् श्रीकृष्णके भी दो रूप हो गये। आधे अङ्गसे द्विभुज श्रीकृष्ण विराजमान रहे और बायें अङ्गसे चार भुजावाले विष्णुका आविर्भाव हुआ। भगवान् श्रीकृष्णने कमला और सरस्वती दोनों देवियोंको भगवान् विष्णुको प्रदान किया और राधाको अपनी सहचरी बनाया। दोनों देवियोंके साथ भगवान् विष्णु वैकुण्ठ पधारे। फिर उनके भी अङ्गसे चार भुजावाले अनेक पार्षद उत्पन्न हुए। सभी पार्षद रूप, तेज, गुण और अवस्थामें श्रीहरिके ही समान थे। लक्ष्मीके भी अङ्गसे उन्हीं-जैसे लक्षणोंसे सम्पन्न करोड़ों दासियाँ उत्पन्न हो गयीं। भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए। अन्तमें उन्होंने ही सृष्टि-रचनाका कार्य सँभाला।

भगवान् श्रीकृष्णके रोमकूपसे असंख्य गोप प्रकट हुए। अवस्था, तेज, रूप, गुण, बल और पराक्रममें वे सभी श्रीकृष्णके समान ही प्रतीत होते थे। प्राणके समान प्रेमभाजन उन गोपोंको प्रभु श्रीकृष्णने अपना पार्षद बना लिया। ऐसे ही श्रीराधाके रोमकूपोंसे बहुत-सी गोपकन्याएँ निकलीं। वे सभी राधाके समान ही जान पड़ती थीं। उन मधुरभाषिणी कन्याओंको श्रीराधाने अपनी दासियाँ बना लिया।

सहसा मूल प्रकृतिसे श्रीकृष्णकी उपासना करनेवाली देवी दुर्गाका आविर्भाव हुआ। ये सृष्टिकी सनातनी शक्ति और भगवान् विष्णुकी माया हैं। इन्हें नारायणी, ईशानी और सर्वशक्तिस्वरूपिणी कहा जाता है। ये परमात्मा श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री हैं। तपाये हुए स्वर्णके समान इनका वर्ण है। इनके मुखपर मन्द-मन्द मुस्कराहट छायी रहती है। अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र ये अपने हाथोंमें लिये रहती हैं। रत्ननिर्मित आभूषण इनकी शोभा बढ़ाते हैं। सम्पूर्ण स्त्रियाँ इनके अंशकी कलासे उत्पन्न हैं। इन्हींसे जगत् शक्तिमान् माना जाता है। स्थिति, बुद्धि, फल, क्षुधा, पिपासा, दया, निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, मति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति और कान्ति सभी इन्हीं दुर्गाके रूप हैं।

फिर भगवान् श्रीकृष्णके दो रूप हो गये। उनका आधा अङ्ग महादेवके रूपमें परिणत हो गया और दक्षिण अङ्गसे गोपीपति श्रीकृष्ण रह गये। महादेवकी कान्ति शुद्ध स्फटिक मणिके समान थी। उनकी भुजाएँ पट्टिश और त्रिशूलसे सुशोभित थीं। वे बाघम्बर पहने थे तथा उनके सिरपर सुन्दर जटाएँ थीं। उनके मस्तकपर चन्द्रमा सुशोभित थे। सर्पोंने भूषण बनकर उन्हें भूषित कर रखा था। उनके दाहिने हाथमें रत्नोंकी माला थी। वे अपने पाँचों मुखोंसे भगवान् श्रीकृष्णके नामका जप कर रहे थे। भगवान् शिव श्रीकृष्णके ही दूसरे रूप तथा अखिल लोक-महेश्वर हैं। उनके भ्रूभङ्गमात्रसे सृष्टिका संहार होता है। वे कृपाके समुद्र हैं। औढरदानी भगवान् प्रसन्न होकर अपने-आपतकको दे डालते हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी दिव्य शक्ति राधाने ब्रह्मा, विष्णु और महेशको प्रकट करके उन्हें सृष्टिके सृजन, पालन और संहारके कार्यमें नियोजित किया।

त्रिदेवोंके द्वारा भगवतीकी आराधना और रावणवधका वरदान

प्राचीन कालमें भगवतीकी आराधना करके उनकी कृपासे रावण त्रैलोक्यविजयी हो गया था। भगवती स्वयं लङ्काकी सुरक्षा करती थीं। रावणका अत्याचार पराकाष्ठापर था। पृथ्वी उसके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर ब्रह्माजीके पास गयी। ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुसे अवतार लेकर रावणके अत्याचारका अन्त करनेकी प्रार्थना की। भगवान् विष्णुने उन्हें अयोध्याके महाराज दशरथके यहाँ पुत्ररूपमें अवतार लेकर रावणके वधका आश्वासन दिया। किंतु जबतक भगवती रावणके अनुकूल होकर लङ्काकी सुरक्षा करती थीं, तबतक कोई भी उसका वध नहीं कर सकता था। इसलिये जगदीश्वरीकी कृपा प्राप्त करनेके लिये त्रिदेव कैलासपर गये। भगवतीने त्रिदेवोंको दर्शन देकर संतुष्ट किया और उनसे आनेका कारण पूछा।

भगवान् विष्णुने विनम्रभावसे कहा—'माँ! रावण आपके कृपाप्रसादसे त्रैलोक्यविजयी हो गया है। संसार उसके अत्याचारोंसे पीड़ित हो रहा है। आप स्वयं लङ्केश्वरी होकर उसके नगरकी रक्षा करती हैं। उस देवशत्रु रावणका नाश कैसे होगा? जिसकी सुरक्षा आप स्वयं करती हैं, उसे भला कौन मार सकता है। जगदम्बा! इस संसारकी रक्षाके लिये आप ही कोई उपाय बतायें। इसलिये हम आपकी शरणमें आये हैं।'

भगवतीने कहा—'मधुसूदन! रावणने दीर्घकालतक मेरी पूजा की है। यह भी सत्य है कि मैं उसकी रक्षाके लिये ही लङ्कामें निवास करती हूँ। अबतक मेरी कृपासे उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं। अब अपने बलके अभिमानसे वह चराचर जगत्को पीड़ित कर रहा है। मैं स्वयं भी अब उसके विनाशके लिये सोच रही हूँ। ब्रह्माजीने ठीक ही कहा है—आपको ही मनुष्यरूपमें अवतार लेना चाहिये। आपके अवतार लेनेपर मेरी अंशभूता लक्ष्मी भी आपकी सहायता करेंगी। वे सीताके नामसे पृथ्वीपर अवतार लेंगी और आपकी पत्नी बनेंगी। रावण कामासक्तिसे मोहित होकर बलपूर्वक उनका अपहरण करेगा। उनके लङ्कामें प्रवेश करते ही मैं उस दुष्टात्मा रावणका विनाश करनेके लिये लङ्काका त्याग कर दूँगी। मधुसूदन! आपके अवतार लेनेपर ब्रह्माजीके पुत्र महर्षि वसिष्ठ आपको गोपनीय मन्त्र प्रदान करेंगे। घोर संग्राममें उस गोपनीय मन्त्रके प्रभावसे आप रावणपर विजय प्राप्त करेंगे। मेरी कृपासे आप दुस्तर समुद्रको वानरोंसहित पार करके लङ्कामें प्रवेश करेंगे। तात! ब्रह्माजीके बताये विधानसे शरत्कालमें समुद्रतटपर मेरी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर और वेदोक्त रीतिसे पूजा करके आप रावणको मारनेमें समर्थ हो जायँगे। बन्धु-बान्धवोंसहित रावणका विनाश करके आप अपूर्व ख्याति अर्जित करेंगे। अतः दुष्ट रावणके विनाशके लिये आप शीघ्र ही मनुष्यरूपमें अवतार ग्रहण करें।'

भगवतीका आश्वासन प्राप्त करके त्रिदेव अपने स्थानपर लौट आये। समयपर भगवान् विष्णुका श्रीरामरूपमें अवतार हुआ। भगवती लक्ष्मी भी महाराज जनकके घरमें परम सुन्दरी कन्याके रूपमें पृथ्वीतलपर अवतरित हुईं। भगवान् श्रीरामने विश्वामित्रके साथ जाकर उनके यज्ञकी रक्षा की और राक्षसोंका संहार किया। तदनन्तर भगवान् श्रीरामने महाराज जनकके धनुषको तोड़कर सीताको पत्नी रूपमें प्राप्त किया। फिर पिताकी आज्ञा स्वीकार कर वे चौदह वर्षके लिये वनमें गये। वहाँ मोहवश रावणने सीताका अपहरण किया। अन्तमें भगवान् श्रीरामने लङ्का जाकर भगवतीकी कृपासे रावणका संहार किया और रामराज्यकी स्थापना हुई।
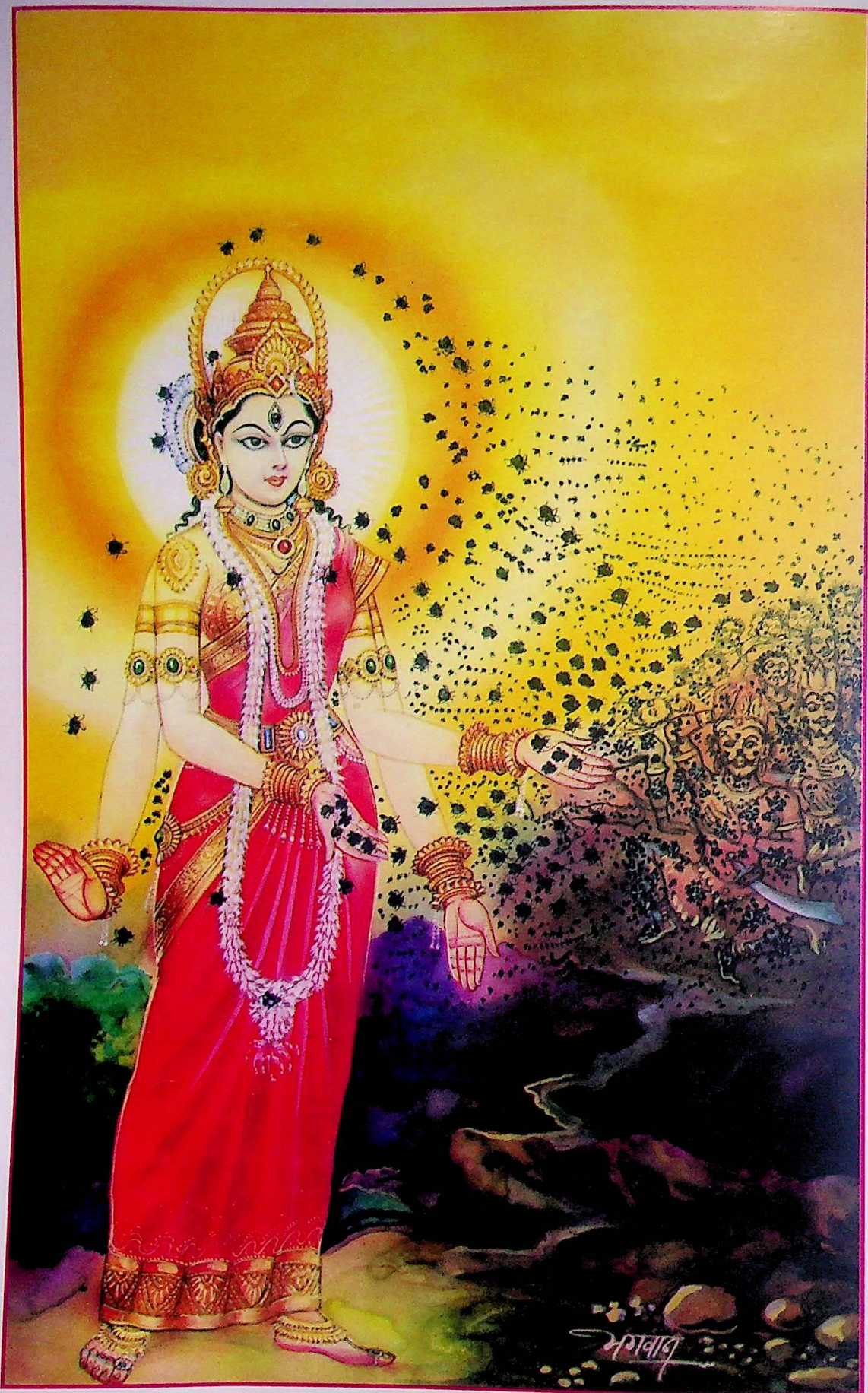
श्रीभ्रामरी देवीकी कथा

पूर्व समयकी बात है। अरुण नामक एक महान् पराक्रमी दैत्य था। उसने देवताओंपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे हिमालयपर जाकर पद्मयोनि ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये हजारों वर्षोंतक कठोर तपस्या की। ब्रह्माजीने उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती गायत्रीके साथ उसे दर्शन दिया और इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा। अरुणने कभी न मरनेका वर माँगा।

अरुणकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उसे समझाते हुए कहा—'संसारमें जन्म लेनेवाला निश्चय ही मृत्युको प्राप्त होता है। जब मेरी भी आयु निर्धारित है, फिर मैं तुम्हें न मरनेका वर कैसे दे सकता हूँ? अतः तुम कोई दूसरा वर माँगो, जो मैं तुम्हें दे सकूँ।' अरुणने कहा—'प्रभो! फिर मुझे अस्त्र-शस्त्र, स्त्री-पुरुष, पशु, देव, दानव किसीके भी हाथसे न मरनेका वर प्रदान करें।' ब्रह्माजी 'तथास्तु' कहकर ब्रह्मलोक चले गये।

वर पानेके बाद अरुणने विशाल दानवी सेनाके साथ इन्द्रकी पुरी अमरावतीको घेर लिया। बात-की-बातमें अरुणने समस्त देवताओंको पराजित कर दिया। उसने तपस्याके प्रभावसे अनेक रूप बना लिये और सूर्य, चन्द्रमा, यम, वायु तथा अग्निके अधिकारोंको पृथक्-पृथक् अपने हाथोंमें लेकर वह स्वयं सबका शासन करने लगा। अपने-अपने स्थानसे च्युत होकर देवता दीन अवस्थामें भगवान् शङ्करकी शरणमें गये, किंतु ब्रह्माके वरदानके आगे वे भी कुछ करनेमें असमर्थ हो गये। उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुमलोग भगवतीकी उपासना करो और किसी भी उपायसे अरुण दैत्यको गायत्री-जपसे विरत करनेकी चेष्टा करो।'

देवताओंके कहनेपर देवगुरु बृहस्पति दैत्यराज अरुणको गायत्री-जपसे विरत करनेके उद्देश्यसे उसके पास गये और अपनी युक्तिसे सफल मनोरथ होकर वापस लौटे। बृहस्पतिकी देवमायासे मोहित होकर अरुणने गायत्री-जप करना छोड़ दिया। इधर देवताओंकी उपासनासे प्रसन्न होकर भगवतीने उन्हें भ्रामरी देवीके रूपमें दर्शन दिया। उस समय उनके कमनीय विग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। उनके सभी अङ्ग दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे। उनकी मुट्ठी अद्भुत भ्रमरोंसे भरी थी। वे करुणामयी देवी वर तथा अभय मुद्रा धारण किये हुए थीं। नाना प्रकारके भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी माला उनकी छबि बढ़ा रही थी। भगवतीका दर्शन प्राप्त करके सभी देवता परम प्रसन्न हुए उन्होंने कहा—'देवताओ! अब तुमलोग निर्भय हो जाओ और यहाँ आनेका कारण बताओ। अपने भक्तोंके कष्टोंका निवारण करना मेरा प्रथम कर्तव्य है।' ब्रह्मादि देवताओंने उनकी नाना प्रकारसे स्तुति की। तदनन्तर देवताओंने भ्रामरी देवीसे अपने दुःखका कारण बताया और अरुण दैत्यके वधके लिये प्रार्थना की।

देवताओंकी आर्तवाणी सुनकर भगवती भ्रामरीने अपने हस्तगत भ्रमरोंको प्रेरित किया। उन असंख्य भ्रमरोंसे त्रिलोकी व्याप्त हो गयी। उस समय उन भ्रमरोंके कारण पृथ्वीपर अन्धकार छा गया। सब ओर केवल भ्रमर-ही-भ्रमर दृष्टिगोचर होने लगे। उन सम्पूर्ण भ्रमरोंने जाकर तुरन्त सेनासहित अरुण दैत्यको छेद डाला। किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे उन विचित्र भ्रमरोंका निवारण न किया जा सका। सभी दैत्योंके प्राण उन भ्रमरोंके काटनेसे प्रयाण कर गये। अरुण भी अपने सहायकोंके साथ मृत्युको प्राप्त हुआ। अरुणके मृत्युके साथ देवताओंके संकटका निवारण हुआ। देवताओंका कार्य सम्पन्न करके भगवती भ्रामरी वहीं अन्तर्धान हो गयीं।

इन्द्रदर्पहारिणी भगवती आदिशक्ति

एक समयकी बात है, मदाभिमानी दैत्यों और देवताओंके बीच भयंकर युद्ध हुआ। यह विस्मयकारक युद्ध लगातार सौ वर्षोंतक चलता रहा। उस समय देवताओंपर भगवती आदिशक्ति कृपालु थीं, अतः देवताओंकी इस महासंग्राममें विजय हुई। दानव पराजित होकर पृथ्वी और स्वर्गको छोड़कर पाताललोकमें चले गये। दैत्योंके पराजित हो जानेपर देवताओंके मनमें अपार हर्ष हुआ। वे विजयके मदमें चूर होकर सर्वत्र अपने पराक्रमका बखान करने लगे।

देवताओंपर परम अनुग्रह करने तथा उनके अहङ्कारको नष्ट करनेके लिये भगवती आदिशक्ति उनके समक्ष यक्षके रूपमें प्रकट हुईं। उनका विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान था। देवराज इन्द्रने अग्निको उस तेजस्वी यक्षका परिचय जाननेके लिये भेजा। अग्निदेव इन्द्रके आदेशसे यक्षके पास पहुँचे। यक्षने अग्निसे कहा—'मेरा परिचय जाननेके पूर्व तुम अपना परिचय देनेकी कृपा करो। पहले यह बताओ कि तुम कौन हो और तुममें क्या पराक्रम है?' इसपर अग्निने कहा—'मैं जातवेदा अग्निदेव हूँ। अखिल विश्वको जला डालनेकी मुझमें शक्ति है।'

अग्निके इस प्रकार कहनेपर यक्षने उनके सामने एक तृण रख दिया और कहा—'यदि विश्वको जला डालनेकी तुममें शक्ति है तो पहले इस तृणको जलाकर दिखाओ।' अग्निदेवने उस तृणको भस्म करनेके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, किंतु उसे भस्म न कर सके। अन्तमें लज्जित होकर वे इन्द्रके पास लौट गये और उनसे वहाँका सारा समाचार बताया। तदनन्तर देवराज इन्द्रने वायुको बुलाया और कहा—'वायुदेव! तुमसे यह सारा जगत् ओतप्रोत है। तुम्हारी चेष्टासे ही संसार सचेष्ट बना हुआ है। तुम ही प्राणरूप होकर अखिल प्राणियोंका संचालन करते हो। अतः अब तुम ही जाकर इस यक्षका पता लगाओ।'

इन्द्रको अपनी प्रशंसा करते देखकर वायुदेव अभिमानसे भर गये। वे तुरन्त यक्षके सन्निकट गये। उन्होंने यक्षसे कहा—'मैं मातरिश्वा हूँ। मुझे लोग वायुदेव कहते हैं। मेरी चेष्टासे ही जगत्के सम्पूर्ण व्यापार चलते हैं।' यक्षने उनसे भी एक तृणको उड़ानेके लिये कहा और वायु अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगानेके बाद उस तृणको हिला भी न सके तथा वे भी लज्जित होकर इन्द्रके पास लौट गये।

सम्पूर्ण देवताओंने इन्द्रसे कहा—'देवराज आप हमलोगोंके स्वामी हैं, अतः यक्षके सम्बन्धमें पूरी जानकारी प्राप्त करनेके लिये अब आप ही प्रयत्न करें।' अन्तमें देवराज इन्द्र अभिमानसे यक्षके सन्निकट गये, किंतु तेजस्वी यक्ष उसी क्षण अन्तर्धान हो गया। देवराज इन्द्र इस घटनाको देखकर लज्जासे डूब गये। वे यक्षका परिचय जाननेके लिये भगवतीके मायाबीजका जप और ध्यान करने लगे। उनका अभिमान नष्ट हो गया। तदनन्तर, वर, पाश, अंकुश और अभय मुद्रा धारण किये हुए भगवती आदिशक्तिने उन्हें दर्शन दिया। भगवतीका दर्शन प्राप्त करके इन्द्र कृतज्ञतासे भर गये। उन्होंने करुण स्वरमें भगवतीकी नाना प्रकारसे स्तुति की और यक्षका परिचय बतानेकी प्रार्थना की। भगवतीने इन्द्रसे कहा—'देवराज! मेरी ही शक्तिसे तुमलोगोंने दैत्योंपर विजय प्राप्त किया है। तुमलोग अभिमानवश मुझ सर्वात्मिका मायाको भूल गये। तुम्हारी बुद्धि अहंकारसे आवृत हो गयी थी। अतः तुमपर अनुग्रह करनेके लिये ही मेरा ही अनुत्तम तेज यक्षरूपमें प्रकट हुआ था। वस्तुतः वह मेरा ही रूप था। तुमलोग अभिमान त्याग करके मुझ सच्चिदानन्दस्वरूपिणी देवीके शरणागत हो जाओ।' इस प्रकार इन्द्रको शिक्षा देकर तथा देवताओंके द्वारा सुपूजित होकर मूल प्रकृति भगवती आदिशक्ति वहीं अन्तर्धान हो गयीं।

श्रीभुवनेश्वरी देवी तथा उनका परमधाम मणिद्वीप

ब्रह्मलोकके ऊपर सर्वलोकके नामसे प्रसिद्ध मणिद्वीप नामक स्थान आदिशक्ति भगवती भुवनेश्वरी देवीका निवास है। सम्पूर्ण लोकोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण ही इसका सर्वलोक नाम है। इसके समान त्रिलोकीमें कहीं कोई भी सुन्दर धाम नहीं है। जगत्‌के लिये यह छत्रस्वरूप है। सभी ब्रह्माण्ड इसीकी छत्रच्छायामें हैं। सांसारिक ताप यहाँ अपना प्रभाव नहीं डाल सकते हैं।

मणिद्वीपमें स्थित चिन्तामणिगृह देवीका प्रधान स्थान है। मूल प्रकृति भगवती भुवनेश्वरीके दस शक्तितत्त्व सोपानरूपसे वहाँ उपस्थित हैं। शक्तियों एवं शक्तितत्त्वोंसे युक्त देवीका ऊँचा मञ्च शोभायमान है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और सदाशिव—ये चारों देवता उस मञ्चके पाये हैं। सदाशिवको उस मञ्चका पटरा कहा जाता है। उस मञ्चके ऊपर परम आदरणीय महान् देवता भुवनेश्वर विद्यमान हैं। सृष्टिके आदिमें अपनी लीला करनेके लिये स्वयं भगवती भुवनेश्वरी ही दो रूपोंमें विराजमान हुईं। उस समय दाहिने भागसे वे भगवान् भुवनेश्वर और बायें भागसे भुवनेश्वरीके रूपमें प्रकट हुईं। भगवतीके अर्धाङ्गस्वरूप वे भुवनेश्वर ही महान् ईश्वर हैं। कामदेवका मर्दन करनेमें कुशल ये महेश्वर करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर हैं। पाँच मुख और तीन नेत्रोंसे विभूषित भगवान् महेश्वर अपनी भुजाओंमें हरिण, अभय, वरमुद्रा तथा फरसा धारण किये हैं। सबपर शासन करनेवाले इन देवेश्वरकी अवस्था सोलह वर्ष-जैसी है। इनके श्रीविग्रहसे सदैव शीतल प्रकाश फैलता रहता है।

भगवान् महेश्वरके वामाङ्कमें भुवनेश्वरी विराजमान हैं। नौ प्रकारके रत्नोंसे बनी हुई दिव्य करधनी भगवतीके कटिभागकी शोभा बढ़ा रही है। सुवर्ण और वैदूर्यमणिका बाजूबन्द देवीकी भुजाओंको सुशोभित किये हुए है। कुंकुम और कस्तूरीके तिलकसे देवीका उन्नत ललाट शोभायमान है। उनके मस्तकपर अमूल्य रत्नोंका दिव्य मुकुट है। उनका मुखमण्डल चन्द्रमाकी ज्योत्स्नाको लज्जित करता है। कमलदलकी आकृति धारण करनेवाले तीन नेत्रोंसे वे अतिशय मनोहर जान पड़ती हैं। उनकी चार भुजाएँ पाश, अङ्कुश, वर और अभयमुद्रासे सुशोभित हैं।

बहुत-सी सखियाँ, दासियाँ और देववृन्द भगवती भुवनेश्वरीकी स्तुति करते रहते हैं। भगवती इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिसे संयुक्त हैं। लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, कीर्ति, कान्ति, क्षमा, दया, बुद्धि, मेधा—ये सभी मूर्तिमती होकर भगवतीके पास विराजती हैं। जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा और अमङ्गला—ये नौ पीठशक्तियाँ भगवती पराम्बाकी सेवामें सदा तत्पर रहती हैं। शङ्खनिधि और पद्मनिधि—ये निधियाँ भगवतीके पार्श्व भागमें विद्यमान हैं। नवरत्नवटा, काञ्चनश्रवा और सप्तधातुवटा संज्ञक नदियाँ इन उपरोक्त निधियोंसे निकली हैं। इस प्रकारकी विशिष्ट शक्तिशालिनी भगवती भुवनेश्वरी भगवान् भुवनेश्वरके वाम-अङ्कमें विराजती हैं।

भगवती भुवनेश्वरीका चिन्तामणिगृह एक हजार योजन लम्बा-चौड़ा कहा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि भगवतीका यह धाम अन्तरिक्षलोकमें सुशोभित है। न तो प्रलयकालमें इसका नाश होता है और न सृष्टिकालमें इसकी उत्पत्ति ही होती है। भगवतीके उपासक मृत्युके बाद यहीं आते हैं। यहाँ मनोरथरूपी फलवाले बहुत-से वृक्ष हैं। मणिद्वीपमें रोगसे किसीका शरीर क्षीण नहीं होता। कभी भी बुढ़ापा अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। यह दिव्य स्थान चिन्ता, मात्सर्य, काम और क्रोधसे रहित है। यहाँ रहनेवाले सभी युवावस्थासे सम्पन्न तथा हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी बने रहते हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले भगवतीके भक्त ही यहाँ भुवनेश्वरीके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त करते हैं। इस प्रकार भगवती भुवनेश्वरी मणिद्वीपमें निवास करते हुए अपने भक्तोंकी सभी कामनाएँ पूर्ण करती हैं तथा मुक्ति भी प्रदान करती हैं।

गायत्री-महिमा

द्विजातिमात्रकी आराध्या भगवती गायत्रीकी महिमा अनन्त है। सत्ययुगसे लेकर अबतक लगातार भगवती गायत्रीकी आराधनासे भक्तगण मनोवाञ्छित सिद्धिके साथ मुक्ति भी सहज ही प्राप्त करते आ रहे हैं। सम्पूर्ण वेदोंने गायत्रीकी उपासनाको ही नित्य कहा है। इसीलिये द्विजातिमात्रका कर्तव्य है कि वे निरन्तर गायत्रीके जप और उनके चरण-कमलोंकी उपासनामें संलग्न रहें।

एक समयकी बात है, इन्द्रने पंद्रह वर्षोंतक जल बरसाना बन्द कर दिया। इस अनावृष्टिके कारण अकाल पड़ गया। घर-घरमें लोग भूख-प्याससे व्यथित होकर प्राण गँवाने लगे। सभी मानव क्षुधाकी ज्वालासे संतप्त होकर एक-दूसरेको खानेके लिये दौड़ते थे। उस समय बहुत-से ब्राह्मणोंने एकत्र होकर यह विचार किया कि 'इस समय महर्षि गौतमजी तपस्याके सबसे बड़े धनी हैं। वही हमलोगोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। गायत्रीकी उपासनाके बलपर आज भी उनका आश्रम अकालसे सुरक्षित है, अतः हमलोगोंको उन्हींकी शरणमें चलना चाहिये।'

इस प्रकार विचार करके समस्त ब्राह्मण महर्षि गौतमके आश्रमपर गये और विनयपूर्वक उन्हें अपने कष्टोंसे अवगत कराये। गौतमजीने उन ब्राह्मणोंको अभय प्रदान किया और अपने आश्रममें रहनेके लिये आश्रय प्रदान किया। ब्राह्मणोंको आश्वासन देकर महर्षि गौतम भगवती गायत्रीकी स्तुति करते हुए प्रार्थना करने लगे—'देवि! तुम ही महाविद्या, वेदमाता और परात्परस्वरूपिणी हो। स्वाहा और स्वधारूपसे शोभा पानेवाली तथा सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेमें कुशल तुम देवीको मेरा कोटिशः प्रणाम है। तुम भक्तोंके लिये कल्पलता और तीनों अवस्थाओंकी परम साक्षिणी हो। तुम्हारा स्वरूप तुरीयावस्थासे अतीत है। सूर्यमण्डलमें तुम्हारा निवास है। प्रातःकाल तुम बालसूर्यके समान रक्तवर्णवाली कुमारी, मध्याह्नकालमें श्रेष्ठ युवती और सायंकालमें वृद्धाके रूपमें विराजती हो। सम्पूर्ण प्राणियोंका उद्धार करनेवाली देवि! मैं तुम्हें बार-बार प्रणाम करता हूँ। तुम शीघ्र दर्शन देकर मेरे यहाँ अतिथिरूपमें पधारे ब्राह्मणोंका संकट निवारण करो।'

इस प्रकार महर्षि गौतमकी स्तुति सुनकर भगवती गायत्रीने प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिया। उन्होंने गौतमको एक पूर्णपात्र दिया। भगवतीने उनसे कहा—'मुने! तुम्हें जिस भी वस्तुकी आवश्यकता होगी, मेरा यह पात्र तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण कर देगा।' ऐसा कहकर भगवती गायत्री वहीं अन्तर्धान हो गयीं।'

भगवतीके द्वारा दिये गये पात्रसे महर्षि गौतमके पास अन्नादि पदार्थ, फल, रेशमी वस्त्र, यज्ञ-सामग्री आदि पर्वतोंके समान ढेर लग गये। मुनिवर गौतम जिस वस्तुकी इच्छा करते थे, वे सभी पदार्थ देवी गायत्रीके पूर्णपात्रसे प्राप्त हो जाते थे। मुनिवर गौतमने सम्पूर्ण मुनियों एवं ब्राह्मणोंको बुलाकर प्रसन्नतापूर्वक धन-धान्य, वस्त्र, आभूषण आदि समर्पित किये। सभी लोग एकत्रित होकर मुनिवर गौतमकी आज्ञासे यज्ञ करने लगे। स्वर्गकी समानता रखनेवाला गौतमजीका वह आश्रम अक्षय अन्न-क्षेत्र बन गया। वहाँ उपस्थित मुनियोंकी स्त्रियाँ दिव्य वस्त्राभूषणादिसे अलङ्कृत होनेके कारण देवाङ्गनाओंके समान दिखायी देने लगीं। भगवती गायत्रीकी कृपासे मुनिवर गौतम सभी लोगोंके लिये भरण-पोषणकी व्यवस्था करते रहे। उन्होंने भगवती गायत्रीकी आराधनाके लिये एक श्रेष्ठ स्थानका निर्माण करवा दिया। ब्राह्मण तथा मुनिलोग वहाँ भगवतीकी नित्य आराधना करते थे। कुछ दिनोंके बाद अकालका समय समाप्त हो गया। भगवतीकी कृपा-प्रसादसे मुनिवर गौतमका यश दसों दिशाओंमें फैल गया।
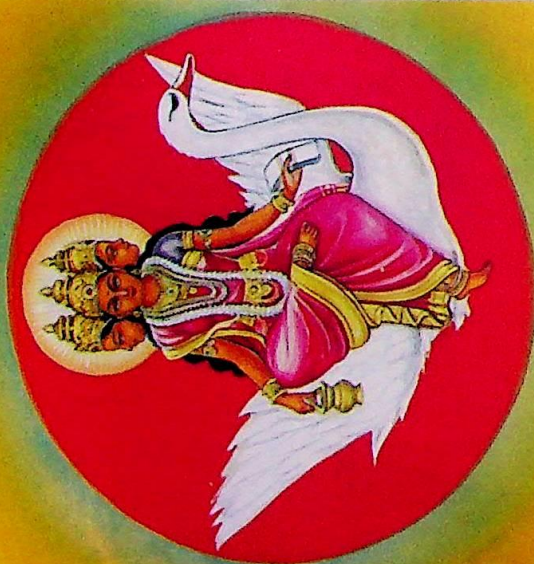
त्रिकालोपास्या भगवती गायत्री

प्रातःकाल मध्याह्नकाल एवं सायंकालकी अधीश्वरी भगवती गायत्री हैं। देवी गायत्रीकी नित्य सन्ध्याकालमें उपासना ही सम्पूर्ण वेदोंका सार है। ब्रह्मा आदि देवता भी सन्ध्याकालमें भगवती गायत्रीका ही ध्यान और जप किया करते हैं। वेदोंके द्वारा भी नित्य इन्हींका जप होता है। अतएव गायत्रीको वेदोपास्या कहा गया है। गायत्री देवीके अतिरिक्त ब्राह्मणोंका अन्य कोई देवता नहीं है। ब्राह्मण एक वृक्ष है, सन्ध्या उसकी जड़ है, वेद शाखाएँ हैं और धार्मिक कृत्य पत्ते हैं। अतएव जड़की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। यदि जड़ ही कट गयी तो न वृक्ष रहेगा न शाखा ही। जिसे सन्ध्याका ज्ञान नहीं है और जो सन्ध्या नहीं करता, वह द्विज शूद्रके समान है। जीते हुए भी उसे मृतक समझना चाहिये। अतः द्विजातिमात्रको नित्य सन्ध्योपासना करनी चाहिये। सन्ध्योपासनाके अभावमें द्विजका किसी भी शुभ कर्ममें अधिकार नहीं है। प्रातःकालकी सन्ध्या ताराओंके रहते हुए, मध्याह्नकी सन्ध्या जब सूर्य मध्याकाशमें हो और सायंकालकी सन्ध्या सूर्यके पश्चिम दिशामें अस्तकालमें करनी चाहिये। इस प्रकार तीनों कालोंमें सन्ध्या करनेका विधान है।

आचमन, प्राणायाम, संकल्प, सूर्यार्घ्य इत्यादिके बाद भगवती गायत्रीका आवाहन, न्यास और ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर गायत्रीका जप और विसर्जन करना चाहिये। भगवती गायत्रीका प्रातःकालका ध्यान इस प्रकारसे करना चाहिये। परमेश्वरी गायत्रीका श्रीविग्रह जपाकुसुमके समान प्रतिभासे सम्पन्न होकर भास रहा है। ये कुमारी अवस्थामें विराजमान हैं। इनका बदन रक्तचन्दनसे अनुलिप्त है तथा ये रक्तकमलपर आसीन हैं। चार मुखों और दो भुजाओंसे शोभायमान ये देवी लाल रंगका वस्त्र पहनी हुई हैं। इन्होंने स्रुक्, स्रुवा, जपमाला और कमण्डलु धारण कर रखा है। इनका वाहन हंस है। ये ब्रह्मारूपा तथा सूर्यमण्डलके मध्य विराजमान हैं।

मध्याह्नकालमें भगवती गायत्री युवतीरूपमें विराजमान हैं। उनकी युवावस्था है तथा ये गरुड़वाहनपर विराजमान हैं। वे युजुर्वेदस्वरूपिणी, विष्णुरूपा, कृष्णवर्णा, त्रिनेत्रा, चतुर्भुजा, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारिणी हैं तथा सूर्यमण्डलके मध्यमें स्थित हैं।

सायंकालकी सन्ध्यामें ध्येय गायत्रीका वृद्धास्वरूप है। वे सामवेदस्वरूपिणी तथा रुद्ररूपा हैं। वे वृषभके वाहनपर आसीन हैं। सफेद वस्त्रसे उनका तन शोभायमान है। उनकी चार भुजाएँ हैं। वे भगवती अपने हाथोंमें त्रिशूल, डमरू, पाश और पात्र धारण की हैं। वे सूर्यमण्डलके मध्यमें स्थित हैं।

भगवती गायत्रीकी त्रिकाल सन्ध्यामें उपास्य यही त्रिशक्ति इच्छा, क्रिया और ज्ञानकी परिचायिका हैं। ब्राह्मी, वैष्णवी तथा गौरी रूपमें यही सृष्टि, पालन और संहार कर रही हैं। इसलिये ब्राह्मण दिवसके आदि, मध्य और अन्तमें भगवतीके त्रिरूपकी उपासना करते हैं। त्रिसन्ध्याके समय इन्हीं तीनों रूपोंकी साधना करते-करते ब्राह्मण धीरे-धीरे साधनाके उच्चतर सोपानमें पहुँचते हैं और भगवतीका अनुग्रह होनेपर चतुर्थ निशासन्ध्याका अधिकार पाते हैं। यही निवृत्ति-मार्गका संन्यास धर्म है। केवल गायत्री देवीकी आराधना करके ही पुराकालमें ब्राह्मणोंने '*एकमेवाद्वितीयम्*', '*अयमात्मा ब्रह्म*', '*सोऽहम्*', '*तत्त्वमसि*' आदि महावाक्योंकी सृष्टि की थी। गायत्री उपासना-जप वास्तवमें ब्रह्मोपासना है, जिसके प्रभावसे मनुष्य मुक्तिका परमपद प्राप्त करता है। सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती ही गायत्रीके नामसे विख्यात हैं। उन 'ह्री' मयी जगदम्बाकी नित्य आराधनाके साथ उन्हें नित्य प्रणाम करना चाहिये। अपने उपासककी बुद्धिको भगवती गायत्री सदैव सन्मार्गकी ओर प्रेरित करती हैं।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ प्रमुख रंगीन चित्र-कथाएँ

- रामलला 1016
- राजा राम 1116
- श्रीराम 1017
- जय हनुमान् 787
- हर हर महादेव 1343
- ॐ नमः शिवाय 204
- प्रमुख ऋषि-मुनि 1442
- भगवान् सूर्य 868
- रामायणके प्रमुख पात्र 1443
- श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र 1488
- श्रीमद्भागवतकी प्रमुख कथाएँ 1537
- महाभारतकी प्रमुख कथाएँ 1538

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०६८ छठा पुनर्मुद्रण ४,०००
कुल मुद्रण ४२,०००
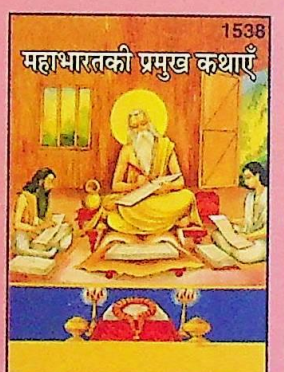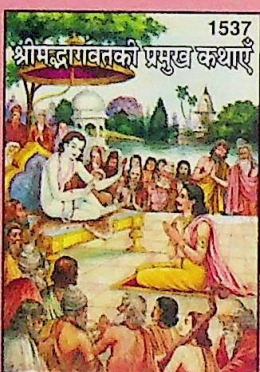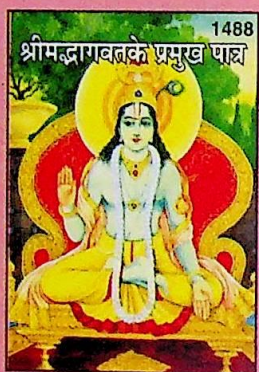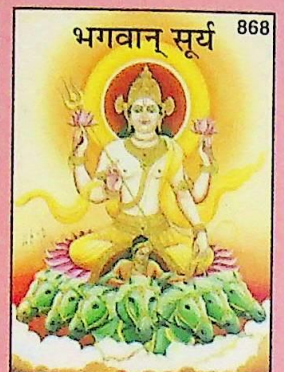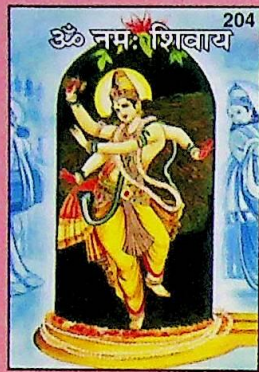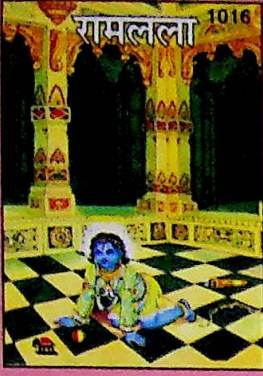
प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)

❖ मूल्य—२० रु०
(बीस रुपये)

ISBN 81-293-1383-9

फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
e-mail : booksales@gitapress.org website : www.gitapress.org

Code 1647